उसकी परिधितक लगाया जाता है) और छः कोण और तीन वलियोंसे शोभित ऐसा सुदर्शन चक्र बनवाकर विद्वान् जन यज्ञोपवीतादिवत् शंख चक्र गदादिको सदा धारण करैं ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ब्राह्मणोंने विशेष करके और तिनमें वैष्णवोंने तो विशेष करके जनेऊ और चोटीकी समान चक्रका चिन्ह धारण करना चाहिये ॥ ५८ ॥ चक्रके चिन्हसे रहित ब्राह्मणका सब कर्म निष्फल है. मेरे चक्रसे चिन्हित शरीर पवित्र है. यह वेदवाक्य है ॥ ५९ ॥ बुद्धिमानोंके चक्रांकितके लिये हव्य कव्य देना चाहिये. मेरा चक्रचिन्हरूप कवच देवता और दैत्योंसे भी नहीं टूट सक्ता

एवं सुदर्शनं चक्रं कारयीत विचक्षणः॥ उपवीतादिवद्धार्याः शंखचक्रगदाः सदा॥५७॥ ब्राह्मणैश्च विशेषेण वैष्णवैश्च विशेषतः॥ उपवीतं शिखा यद्वच्चक्रं लांछनसंयुतम् ॥ ५८ ॥ चक्रलांछनहीनस्य विप्रस्य विफलं भवेत् ॥ मम चक्रांकितो देहः पवित्र इति वै श्रुतिः ॥ ५९ ॥ चक्रांकिताय ॥ दातव्यं हव्यं कव्यं विचक्षणैः ॥ मम चक्रांककवचमभेद्यं देवदानवैः ॥६०॥ अजेयः सर्वभूतानां शत्रूणां रक्षसामपि ॥ मम चक्रांककवचं शरीरे यस्य तिष्ठति ॥ ६१ ॥ नाशुभं विद्यते तस्य गृहपुत्रादिकस्य हि ॥ दक्षिणे च भुजे विप्रो बिभृयाद्वै सुदर्शनम् ॥ ६२ ॥ सव्ये च शंखं बिभृयादिति वेदविदो विदुः ॥ तत्तन्मंत्रेण मंत्रज्ञः प्रतिष्ठाप्य पृथक्पृथक् ॥ ६३ ॥ ललाटे च गदा धार्या मूर्ध्नि चापं शरस्तथा ॥ नंदकं चैव हृन्मध्ये शंखचक्रे भुजद्वये ॥ ६४ ॥

आर्म ३-४

॥ ६० ॥ जिसके शरीरपर मेरा चक्रका चिन्हरूप कवच है वह राक्षसादि सब प्राणिरूप शत्रुओंसे अजेय है ॥ ६१ ॥ और उसके घर और पुत्रादिकोंमें कुछ अशुभ नहीं होता. ब्राह्मण दक्षिण भुजामें सुदर्शन चक्र धारण करै ॥ ६२ ॥ और वाम भुजामें शंख धारण करै, यह वेदके जाननेवाले कहते हैं. मंत्रका जाननेवाला अलग २ उनके मंत्रोंसे शंखादि चिन्ह धारण करै ॥ ६३ ॥ मस्तकपर गदा, मूर्द्धा (शिर) पर धनुष बाण,

हृदयमें नंदक (तलवार), भुजाओंमें शंख और चक्र ॥ ६४ ॥ इसकारण सदा सब प्रयत्नकरके चक्रादिक धारण करे. फिर ब्राह्मण इसप्रकार कहै ॥ ६५ ॥ पुत्र मित्र स्त्री कुटुंबादि सब अपने देहसहित मैंने विष्णुकी प्रसन्नताके लिये अर्पण किया ॥ ६६ ॥ फिर श्रेष्ठ मनोरथवाला सदा पूर्ण भक्तिसे जीवनपर्यंत अपने धर्ममें स्थित रहै ॥ ६७ ॥ जो नीच जन शंखचक्रांकित पुरुषको देखकर निंदा करते हैं उनका मुख देखकर सूर्यका

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन चक्रादीन् धारयेत्सदा ॥ धारणानंतरं ब्रूयात्तत्र चैवं द्विजोत्तम ॥ ६५ ॥ पुत्रमित्रकलत्रादिर्यः कश्चिन्मत्परिग्रहः ॥ सह देहेन सर्वोसौ विष्णुप्रीत्यै मयार्पितः ॥ ६६ ॥ पश्चात्स्वधर्ममास्थाय तिष्ठेदाजीवनं मम ॥ भक्त्या चाव्यभिचारिण्या सर्वदाऽऽप्तमनोरथः ॥ ६७ ॥ शंखचक्रांकितं दृष्ट्वा ये निंदंति नराधमाः ॥ अवलोक्य मुखं तेषामादित्यमवलोकयेत् ॥ श्रीकृष्णनाम चोच्चार्य शुद्धो भवति नान्यथा ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे मार्गशीर्षमाहात्म्ये तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ तप्तचक्रांकितं कृत्वा ह्यात्मानमथ दीक्षितम् ॥ पद्माक्षतुलसीमालाफलं किं ब्रूहि केशव ॥ १ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ तुलसीकाष्ठसंभूतां यो मालां वहते द्विजः ॥ अप्यशौचोप्यनाचारो मामेवैति न संशयः ॥ २ ॥

दर्शन करै अथवा श्रीकृष्णका नाम उच्चारण करै तब शुद्ध होता है ॥ ६८ ॥ इतिश्रीस्कंदपुराणे मार्गशीर्षमाहात्म्यभाषायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ब्रह्मा बोले ॥ तप्त चक्रसे चिन्हित है हृदय जिसका ऐसे दीक्षित पुरुषको कमल और तुलसीकी मालाका क्या फल है ? हे केशव ! यह मुझसे कहिये ॥ १ ॥ श्रीभगवान बोले ॥ शौचरहित आचारभ्रष्ट ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य भी जो तुलसीकी माला धारण करता है वह मुझको प्राप्त होता है

इसमें संदेह नहीं है ॥ २ ॥ आमले वा तुलसीकी माला जिसकी देहमें दिखाई देती है वह भगवान्‌को प्राप्त होनेवाला मनुष्य है ॥ ३ ॥ जो मनुष्य तुलसीदलकी माला, विशेष करके मेरी उतरी हुई (विष्णुमूर्तिको धारण कराई हुई माला जो अगले दिन उतारी गई हो) मालाको कंठमें धारण करता है उसे देवता भी नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥ तुलसी और आमलेकी माला पापियोंको भी मुक्ति देती है फिर क्या (मम) मेरे सेवकोंको मुक्ति न देगी ॥ ५ ॥

धात्रीफलकृता माला तुलसीकाष्ठसंभवा ॥ दृश्यते यस्य देहे तु स वै भागवतो नरः ॥ ३ ॥ तुलसीदलजां मालां कंठस्था वहते तु यः ॥ ममोत्तीर्णां विशेषेण स नमस्यो दिवौकसाम् ॥ ४ ॥ तुलसीदलजां मालां धात्रीफलकृतामपि ॥ ददाति पापिनां मुक्तिं किं पुनर्मम सेविनाम् ॥ ५ ॥ तुलसीदलजां मालां ममोत्तीर्णां वहेत्तु यः ॥ पत्रेपत्रेऽश्वमेधानां दशानां लभते फलम् ॥ ६ ॥ तुलसीकाष्ठसंभूतां यो मालां वहते नरः ॥ फलं यच्छाम्यहं वत्स प्रत्यहं द्वारकोद्भवम् ॥ ७ ॥ निवेद्य भक्त्या मां मालां तुलसीकाष्ठसंभवाम् ॥ वहते यो नरो भक्त्या तस्य वै नास्ति पातकम् ॥ ८ ॥ सदा प्रीतमनास्तस्य अहं प्राणवरो हि सः ॥ तुलसीकाष्ठसंभूतां यो मालां वहते नरः ॥ ९ ॥

मेरी उतरी हुई तुलसीदलकी मालाको जो पुरुष धारण करता है वह एक २ पत्रके धारण करनेसे दश २ अश्वमेधका फल पाता है ॥ ६ ॥ जो मनुष्य नित्यप्रति तुलसीके काष्ठकी माला धारण करता है उसको मैं द्वारकाके निवासका फल देताहूं ॥ ७ ॥ जो मनुष्य तुलसीकी मालाको भक्तिपूर्वक मुझे निवेदन कर भक्तिसे पहरता है उस मनुष्यमें कोई पातक नहीं रहता ॥ ८ ॥ जो मनुष्य तुलसीके काष्ठकी माला पहरता है मैं उससे

करें ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ और कमलगट्टे वा आमलेके फलोंकी पुण्यदायिनी माला और ऊर्ध्वपुंड्र शंखादि चिन्ह धारण किये हुए, तुलसीकी जड़में बैठकर ॥ १७ ॥ हाथमें कुशा लिये मुझे स्मरण करता हुआ संध्योपासनादि करै. संध्यादि कर्म करके मेरा भक्त मेरा पूजन करै ॥ १८ ॥ जो वहां गुरु हो तो पहिले जाकर उन्हें प्रणाम करै और प्रसन्न होकर उन्हें कुछ भेट दे दंडवत करै ॥ १९ ॥ और

पद्माक्षनिर्मिता भक्त्या फलैर्धात्र्याः सुपुण्यदा ॥ तदूर्ध्वपुंड्रशंखाद्यैर्युक्तस्तुलसिमूलके ॥ १७ ॥ संध्योपास्त्यादिकं कुर्यात्कुश-
पाणिर्हि मां स्मरन् ॥ कृतसंध्यादिको भक्तस्ततः संपूजयेच्च माम् ॥ १८ ॥ गुरुश्चेत्तत्र वर्तेत आदौ गत्वा नमेद्गुरुम् ॥
किंचिद्दत्त्वोपायनं च दंडवत्प्रणमेन्मुदा ॥ १९ ॥ आचम्यैकाग्रमनसा पूजामंडपमाविशेत् ॥ उपविश्यासने रम्ये कृष्णाजिनकुशोत्तरे
॥ २० ॥ सम्यक्पद्मासनासीनो भूतशुद्धिं समाचरेत् ॥ प्राणायामत्रयं कृत्वा मंत्रेण च जितेंद्रियः ॥ २१ ॥ उदङ्मुखस्ततः
कृत्वा हृत्पंकजमनुत्तमम् ॥ विकासं तस्य कुर्वीत विज्ञानरविणा हृदि ॥ २२ ॥ कर्णिकाया न्यसेच्चार्कं शशिमग्निमनुक्रमात् ॥
त्रयं त्रयात्मके तस्मिन् चिंतयेद्वैष्णवो नरः ॥ २३ ॥

एकाग्र मनसे आचमन कर पूजाके मंडपमें प्रवेश करै. काले मृगके चर्म वा कुशाके सुंदर आसनपर बैठ कर, सम्यक् प्रकारसे पद्मासन बांधकर भूतशुद्धि करै, फिर जितेंद्रिय पुरुष उत्तरमुख हो मंत्रपूर्वक तीन प्राणायाम करके, जिससे कोई उत्तम नहीं ऐसे हृदयरूप कमलको ज्ञानरूप सूर्यसे प्रकाशित करै ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ और कर्णिका (डोंडी) में सूर्यचंद्रअग्निको धारण कर, तिस हृदय कमलमें वैष्णव जन उन तीनोंका ध्यान करै

सदा प्रसन्न रहता हूं. और वह मुझे प्राणोंसे श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥ जिसके शिरपर तुलसीके काष्ठका भूषण है उसे कुछ प्रायश्चित्त कर्त्तव्य नहीं और उसके शरीरमें कुछ अपवित्रता नहीं ॥ १० ॥ जिसकी भुजा और हाथमें तुलसीकी माला है वह मेरा प्रिय है. तुलसीकी मालाओंसे भूषित जो मनुष्य पितरों वा देवतोंके निमित्त पुण्य करता है वह पुण्य करोड़गुणा होता है. तुलसीकी मालाको देखकर

प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति नाशौचं तस्य विग्रहे ॥ तुलसीकाष्ठसंभूतं शिरसः काष्ठभूषणम् ॥ १० ॥ बाहौ करे च मर्त्यस्य देहे यस्य स मे प्रियः ॥ तुलसीकाष्ठमालाभिर्भूषितः पुण्यमाचरेत् ॥ ११ ॥ पितॄणां देवतानां च पुण्यं कोटिगुणं भवेत् ॥ तुलसीकाष्ठमालां तु प्रेतराजस्य दूतकाः ॥ १२ ॥ दृष्ट्वा नश्यंति दूरेण वातोद्धूतं यथा दलम् ॥ यद्गृहे तुलसीकाष्ठं पत्रं शुष्कमथार्द्रकम् ॥ १३ ॥ भवंति तद्गृहे नैव पापं संक्रमते कलौ ॥ तुलसीकाष्ठमालाभिर्भूषितो भ्रमते भुवि ॥ १४ ॥ दुःस्वप्नं दुर्निमित्तं च न भयं शात्रवं क्वचित् ॥ धारयंति न ये मालां हैतुकाः पापबुद्धयः ॥ १५ ॥ नरकान्न निवर्तंते दग्धाः कोपाग्निना मम ॥ तस्माद्धार्या प्रयत्नेन माला तुलसिसंभवा ॥ १६ ॥

यमदूत वायुसे उडाये हुए बादलोंकीसमान नष्ट होते हैं. जिसके घर सूखा वा गीला तुलसीका काष्ठ वा पत्ते हों, कलियुगमें उसके घरमें पाप नहीं रहता. तुलसीकी मालाओंसे भूषित जो पृथ्वीपर घूमता है उसे दुष्ट स्वप्न, दुष्ट निमित्त और शत्रुभय नहीं रहता. जो विरोधी पापबुद्धि मनुष्य तुलसीकी माला धारण नहीं करते वे मेरे कोपकी अग्निसे जले हुए नरकसे नहीं निवृत्त होते. इसकारण मनुष्य यत्नपूर्वक तुलसीकी माला धारण

करै ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ और कमलगट्टे वा आमलेके फलोंकी पुण्यदायिनी माला और ऊर्ध्वपुंड्र शंखादि चिन्ह धारण किये हुए, तुलसीकी जड़में बैठकर ॥ १७ ॥ हाथमें कुशा लिये मुझे स्मरण करता हुआ संध्योपासनादि करै. संध्यादि कर्म करके मेरा भक्त मेरा पूजन करै ॥ १८ ॥ जो वहां गुरु हो तो पहिले जाकर उन्हें प्रणाम करै और प्रसन्न होकर उन्हें कुछ भेट दे दंडवत करै ॥ १९ ॥ और

पद्माक्षनिर्मिता भक्त्या फलैर्धात्र्याः सुपुण्यदा ॥ तदूर्ध्वपुंड्रशंखाद्यैर्युक्तस्तुलसिमूलके ॥ १७ ॥ संध्योपास्त्यादिकं कुर्यात्कुशपाणिर्हि मां स्मरन् ॥ कृतसंध्यादिको भक्तस्ततः संपूजयेच्च माम् ॥ १८ ॥ गुरुश्चेत्तत्र वर्तेत आदौ गत्वा नमेद्गुरुम् ॥ किंचिद्दत्त्वोपायनं च दंडवत्प्रणमेन्मुदा ॥ १९ ॥ आचम्यैकाग्रमनसा पूजामंडपमाविशेत् ॥ उपविश्यासने रम्ये कृष्णाजिनकुशोत्तरे ॥ २० ॥ सम्यक्पद्मासनासीनो भूतशुद्धिं समाचरेत् ॥ प्राणायामत्रयं कृत्वा मंत्रेण च जितेंद्रियः ॥ २१ ॥ उदङ्मुखस्ततः कृत्वा हृत्पंकजमनुत्तमम् ॥ विकासं तस्य कुर्वीत विज्ञानरविणा हृदि ॥ २२ ॥ कर्णिकाया न्यसेचार्कं शशिमग्निमनुक्रमात् ॥ त्रयं त्रयात्मके तस्मिन् चिंतयेद्वैष्णवो नरः ॥ २३ ॥

एकाग्र मनसे आचमन कर पूजाके मंडपमें प्रवेश करै. काले मृगके चर्म वा कुशाके सुंदर आसनपर बैठ कर, सम्यक् प्रकारसे पद्मासन बांधकर भूतशुद्धि करै, फिर जितेंद्रिय पुरुष उत्तरमुख हो मंत्रपूर्वक तीन प्राणायाम करके, जिससे कोई उत्तम नहीं ऐसे हृदयरूप कमलको ज्ञानरूप सूर्यसे प्रकाशित करै ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ और कर्णिका (डोंडी) में सूर्यचंद्रअग्निको धारण कर, तिस हृदय कमलमें वैष्णव जन उन तीनोंका ध्यान करै

॥ २३ ॥ नानारत्नजटित सिंहासनपर कोमल, स्निग्ध, उदय होते सूर्यकी समान कांतिमान् ॥ २४ ॥ अष्टदल कमलकी धारण कर, उसके एक २ दलपर अष्टाक्षर मंत्रका एक २ अक्षर धारण करै- फिर उसपर स्थित करोडों चंद्रमाके समान कांतिमान् ॥ २५ ॥ चतुर्बाहु, शंख चक्र गदा पद्मधारी, कमलपत्रके समान विशालनयन, सर्व श्रेष्ठ लक्षणयुक्त ॥ २६ ॥ श्रीवत्स और कौस्तुभ मणि हृदयमें धारण किये हुए, पीतांबरधारी, विचित्र आभरणोंसे संयुक्त,

नानारत्नमयं पीठं तेषामुपरि विन्यसेत् ॥ तस्मिन्मृदुश्लक्ष्णतरं बालार्कसदृशद्युतिम् ॥ २४ ॥ अष्टैश्वर्यदलं पद्मं मंत्राक्षरमयं न्यसेत् ॥ तस्मिन्देवं समासीनं कोटिसीतांशुसन्निभम् ॥ २५ ॥ चतुर्भुजं महापद्मशंखचक्रगदाधरम् ॥ पद्मपत्रविशालाक्षं सर्वलक्षणलक्षितम् ॥ २६ ॥ श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं पीतवस्त्रान्वितं च माम् ॥ विचित्राभरणैर्युक्तं दिव्यमंडनमंडितम् ॥ २७ ॥ दिव्यचंदनलिप्तांगं दिव्यपुष्पोपशोभितम् ॥ तुलसीकोमलदलवनमालाविभूषितम् ॥ २८ ॥ कोटिबालार्कसदृशं कांतं दिव्यश्रिया सह ॥ सर्वलक्षणलक्षिण्या समाश्लिष्टतनुं शिवम् ॥ २९ ॥ एवं ध्यात्वा जपेन्मंत्रं समाहितमनाः शुचिः ॥ सहस्रं शतवारं वा यथाशक्ति जपेन्मनुम् ॥ ३० ॥

दिव्य भूषणोंसे भूषित ॥ २७ ॥ दिव्य चंदन धारण किये, दिव्य पुष्पोंसे शोभित, कोमल तुलसीदलकी वनमालासे विभूषित ॥ २८ ॥ करोडों बालसूर्यकी समान शोभायमान संपूर्ण सुलक्षणसंपन्न, दिव्य लक्ष्मीको शरीरमें धारण किये हुये जो कल्याणरूप विष्णु हैं उनका ध्यान करै ॥ २९ ॥ इसप्रकार ध्यान कर सावधानचित्त हो, पवित्र होकर, सहस्र वा सौ वार यथाशक्ति मंत्र जपै ॥ ३० ॥

फिर मनसे विधिपूर्वक पूजन करके संप्रदायके अनुसार मेरे आगे शंखको स्थापन कर ॥ ३१ ॥ दूर्वा पुष्प सुगंध जलसे पूर्ण करै. दक्षिण भागमें चंदन और पुष्पोंका पात्र स्थापन करै ॥ ३२ ॥ वाम भागमें पवित्र वस्त्र और सुगंधयुक्त कलश स्थापन करै. मेरे आगे घंटा और दिशाओंमें दीपोंको रक्खै ॥ ३३ ॥ और सब साधन यथायोग्य स्थानोंपर रक्खै. अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय और मधुपर्ककेवास्ते ॥ ३४ ॥ मेरे आगे चार पात्र रक्खै

मनसैवार्चनं कृत्वा ततो विधिवदाचरेत् ॥ संप्रदायानुरोधेन शंखं स्थाप्य ममाग्रतः ॥ ३१ ॥ दूर्वांकुरैश्च पुष्पैश्च गंधोदेन च पूरितम् ॥ दक्षिणे गंधपुष्पाणां पात्रं स्थाप्यं च दैशिकैः ॥ ३२ ॥ वामभागे न्यसेत्कुंभं वस्त्रपूतं सुवासितम् ॥ पुरतो मम घंटा च दिक्षु दीपान्नियोजयेत् ॥ ३३ ॥ अन्यत्सर्वं साधनं च यथास्थानेषु विन्यसेत् ॥ अर्घ्यपाद्याचमनीयमधुपर्कस्य कारणात् ॥ ३४ ॥ विन्यसेत्पुरतो मह्यं चत्वार्यमत्रकाणि वै ॥ सिद्धार्थाक्षतपुष्पाणि कुशाग्रं तिलचंदनम् ॥ ३५ ॥ फलं यवाश्चतुर्वक्त्र अर्घ्यपात्रे विनिक्षिपेत् ॥ दूर्वा विष्णुपदी श्यामा पद्मं चैव चतुर्थकम् ॥ ३६ ॥ पाद्यपात्रे न्यसेत्पुत्र देशिको मम तुष्टये ॥ कंकोलं च लवंगं च फलं मालतिसंभवम् ॥ ३७ ॥ कुर्याद्वै श्रद्धया पुत्र पात्रे आचमनीयके ॥ गव्यं पयो दधि मधु घृतं खंडसमन्वितम् ॥ ३८ ॥

हे ब्रह्मा ! अक्षत, पुष्प, कुशा, तिल, चंदन, फल, यव ये वस्तु अर्घ्यके पात्रमें डालै. दूर्वा, विष्णुपदी (गंगाजल), श्यामा (प्रियंगु) का पुष्प, कमल ॥३५॥ ॥ ३६ ॥ ये वस्तु मेरी प्रसन्नताके लिये पाद्यके पात्रमें रक्खै. कंकोल, लवंग, फल, चमेलीके पुष्प ॥ ३७ ॥ आचमनीयके पात्रमें रक्खै. गायका दूध,

दही, मधु, घृत, खांड ॥ ३८ ॥ श्रद्धापूर्वक मधुपर्कके पात्रमें रक्खै. कहे हुए द्रव्योंके न मिलनेपर विधिका जाननेवाला पत्र पुष्पादिकोंकोही उन २ द्रव्योंकी
भावनासे रक्खै. फिर करन्यास अंगन्यास करै ॥ ३९ ॥ ४० ॥ संप्रदायके अनुसार पंचांगका वा षडंगका न्यास करै. मेरा स्मरण करै और
अपनी आत्माको मेरी समान जानै ॥ ४१ ॥ हे ब्रह्मा ! पूजाके आरंभमें मंगलपाठ कर, मेरे प्रिय पांचजन्य शंखका पूजन करै. ॥ ४२ ॥ हे वत्स !

मधुपर्कस्य पात्रे वै दद्याद्वै श्रद्धयार्चकः ॥ उक्तानां द्रव्यजातीनामलाभे पत्रपुष्पयोः ॥ ३९ ॥ तत्तद्भावनया कुर्यात्स
वेदा विधिकोविदः ॥ करन्यासं ततः कुर्यादंगन्यासं तथैव च ॥ ४० ॥ पंचांगं वा षडंगं वा विन्यसेत्संप्रदायतः ॥ ममानुस्मरणं
कार्यमात्मानं मत्समं स्मरेत् ॥ ४१ ॥ पूजारंभे चतुर्वक्त्र मंगलं तु पठेन्नरः ॥ अथ संपूजयेच्छंखं पांचजन्यं मम प्रियम् ॥ ४२ ॥
यस्य संपूजनाद्वत्स आनंदः परमो मम ॥ शंखस्य पूजने वत्स मंत्रानेतानुदीरयेत् ॥ ४३ ॥ त्वं पुरा सागरोत्पन्नो विष्णुना
विधृतः करे ॥ निर्मितः सर्वदेवैश्च पांचजन्य नमोस्तु ते ॥ ४४ ॥ तव नादेन जीमृता वित्रसंति सुराऽसुराः ॥ शशांकायुतदीप्ताभ
पाचजन्य नमोस्तु ते ॥ ४५ ॥ गर्भा देवारिनारीणां विलीयंते सहस्रधा ॥ तव नादेन पाताले पांचजन्य नमोस्तु ते ॥ ४६ ॥

उसके पूजनसे मुझे बड़ा आनंद होता है. हे पुत्र ! शंखके पूजनमें इन मत्रोंको पढ़ै ॥ ४३ ॥ हे शंख ! तू प्रथम समुद्रसे उत्पन्न हुआ, फिर विष्णुने
हाथमें धारण किया और सब देवतोंने निर्माण किया. हे पांचजन्य ! तुम्हें नमस्कार है ॥ ४४ ॥ तुम्हारे शब्दसे देवता और दैत्य सब रक्षित हैं.
हे चंद्रमाकी समान प्रकाशमान ! पांचजन्य ! तुम्हें नमस्कार है ॥ ४५ ॥ तुम्हारे शब्दसे पातालतक शत्रुओंकी स्त्रियोंका गर्भ सहस्रखंड होता

है. हे पांचजन्य ! तुम्हें नमस्कार है ॥ ४६ ॥ शंखके दर्शनहीसे सूर्योदयमें हिमकी समान पाप नष्ट होते हैं फिर क्या स्पर्श करनेसे न होंगे ॥ ४७ ॥ शंखको नमस्कार करके हाथमें लेकर इन मंत्रोंसे जो वैष्णव मुझको भक्तिपूर्वक स्नान कराता है उसका अनंत पुण्य है ॥ ४८ ॥ सुगंधित तैल मलकर कस्तूरी चंदनादिका उबटन करै ॥ ४९ ॥ फिर सुगंधित जलोंसे स्नान करके मंत्रपूर्वक अर्घ्य

दर्शनेनैव शंखस्य किं पुनः स्पर्शने कृते ॥ विलयं यांति पापानि हिमवद्भास्करोदये ॥ ४७ ॥ नत्वा शंखं करे धृत्वा मंत्रैरेभिस्तु वैष्णवः ॥ यः स्नापयति मां भक्त्या तस्य पुण्यमनंतकम् ॥ ४८ ॥ सुवासितेन तैलेन कुर्यादभ्यंजनं ततः ॥ कस्तूर्या चंदनेनैव कुर्यादुद्वर्तनादिकम् ॥ ४९ ॥ सुगंधवासितैस्तोयैः स्नाप्य मंत्रयुतैः शुभैः ॥ अर्घ्यं दत्त्वा ततो वत्स पाद्यमाचमनीयकम् ॥ ५० ॥ मधुपर्कं ततो दद्यादथ सर्वोपचारकान् ॥ वस्त्रैराभरणैर्दिव्यैरलंकृत्य यथाविधि ॥ ५१ ॥ पुष्पैः संपूजयेत्पीठं तत्र देवं निधाय च॥ वस्त्रालंकारगंधादीनर्पयेच्छ्रद्धया मम ॥ ५२ ॥ नैवेद्यं विविधं दद्यात्पायसापूपमिश्रितम्॥ सकर्पूरं च तांबूलं भक्त्या चैव निवेदयेत् ॥ ५३ ॥ सुरभीणि च पुष्पाणि भक्त्या सम्यङ् निवेदयेत् ॥ धूपं दशांगमष्टांगं दीपं च सुमनोहरम् ॥ ५४ ॥

पाद्य आचमनीय देकर ॥ ५० ॥ विधिपूर्वक दिव्यवस्त्र आभरणोंसे अलंकृत करके फिर सब सामग्री समर्पण करै ॥ ५१ ॥ पुष्पोंसे सिंहासनका पूजन करै. उसमें मुझे विष्णुको बिठाकर वस्त्र, भूषण, सुगंधित द्रव्य, श्रद्धापूर्वक मेरे अर्पण करै ॥ ५२ ॥ नानाप्रकारके पायस (खीर आदि दुग्धसे बनाए द्रव्य), पूडे, कपूरसे युक्त तांबूल ॥ ५३ ॥ सुगंधित फूल, दशांग धूप, और अष्टांग मनोहर दीपक, भक्तिपूर्वक निवेदन करै ॥ ५४ ॥

आदरपूर्वक प्रणाम और स्तुति करके पर सुलाकर मंगलार्थ अर्घ्य निवेदन करै ॥ ५५ ॥ ॥ इतिश्रीस्कंदपुराणे मार्गशिरमाहात्म्यभाषायां चतुर्थोध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ ब्रह्माजी बोले ॥ हे अजित ! हे अच्युत ! हरिको पंचामृतसे स्नान करानेसे और शंखके जलमें स्नान करानेसे जो फल होता है वह मुझसे कहिये ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले ॥ जो मनुष्य मेरे शिरपर दुग्ध छोडकर स्नान कराते हैं वे एक २ बूंदसे सौ २ अश्वमेधका फल पाते

परिणीय प्रणम्याथ स्तुत्वा स्तुतिभिरादरात् ॥ शाययित्वा तु पर्यंके मंगलार्घ्यं निवेदयेत् ॥ ५५ ॥ इतिश्रीस्कंदपुराणे मार्गशीर्षमाहात्म्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ पंचामृतस्य स्नपनाद्यत्फलं लभते हरेः ॥ शंखोदकेन यत्किंचित्तन्मे ब्रूह्यजिताच्युत ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ क्षीरस्नानं प्रकुर्वंति ये नरा मम मूर्द्धनि ॥ शताश्वमेधजं पुण्यं बिंदुना बिंदुना स्मृतम् ॥ २ ॥ क्षीराद्दशगुणं दध्ना घृतेनैव दशोत्तरम् ॥ मधुना तद्दशगुणं सितया तु ततोधिकम् ॥ गंधपुष्पोदके मंत्रैं सर्वोत्कृष्टं प्रशस्यते ॥ ३ ॥ द्वादश्यां पंचदश्यां वा गव्येन पयसा मम ॥ स्नापनं देवशार्दूल महापातकनाशनम् ॥ ४ ॥ दध्यादीनां विकाराणां क्षीरतः संभवो यथा ॥ तथैव शेषकामानां क्षीरस्नपनतो मम ॥ ५ ॥

हैं ॥ २ ॥ दहीके स्नान करानेसे दूधसे दशगुणा, और घृतसे स्नान करानेसे दहीसे दशगुणा, मधुसे स्नान करानेसे घृतसे दशगुणा फल प्राप्त होता है और मिश्रीसे स्नान करानेसे उससे भी अधिक फल होता है. मंत्रपूर्वक गंध, पुष्प, जल चढानेमें सबसे अधिक फल है ॥ ३ ॥ हे देवतोंमें श्रेष्ठ ! द्वादशी और पूर्णमासीको गायके दूधसे स्नान करानेसे महापातक नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥ जैसे दूधसे दही आदिकोंकी उत्पत्ति है ऐसेही दूधके स्नान

करानेसे शेषकामना भी सफल होती हैं ॥ ५ ॥ दूधके स्नान करानेसे सौभाग्य होता है, दहीके स्नान करानेसे मिष्टान्न, घृतसे जो मनुष्य स्नान कराता है वह मेरे लोकको जाता है ॥ ६ ॥ जो मार्गशिरमें शर्करासे स्नान कराता है वह स्वर्गसे यहां आकर इस लोकका राजा होता है ॥ ७ ॥ वह हाथी घोडे रथ आदिसे पृथ्वीका सम्पूर्ण राज्य प्राप्त करता है. मार्गशिरमें जो मुझे दूधसे स्नान कराता है ॥ ८ ॥ वह स्वर्गमें चंद्र रुद्र

क्षीरस्नानेन सौभाग्यं दध्ना मिष्टान्नभोजनम् ॥ घृतेन स्नापयेद्योमां नरो मम पुरं व्रजेत् ॥ ६ ॥ स्नानं शर्करया यस्तु कारयेन्मार्गशीर्षके ॥ स राजा जायते लोके पुनः स्वर्गादिहागतः ॥ ७ ॥ गजाश्वरथसंपूर्णं स राज्यं लभते भुवि ॥ कारयेन्मार्गशीर्षे वै यः क्षीरस्नापनं मम ॥ ८ ॥ स्वर्गे लोके स जयति चंद्ररुद्रेंद्रमारुतान् ॥ क्षीरस्नानं परं श्रेष्ठं मार्गशीर्षे च पुत्रक ॥ ९ ॥ क्षीरस्नपनमाहात्म्यं वर्चस्कं पुष्टिवर्धनम् ॥ दौर्भाग्यं विलयं याति क्षीरस्नानेन मे सुत ॥ १० ॥ स्नापयेन्मार्गशीर्षे मां यो वै पंचामृतेन तु ॥ स न शोच्यो भवेज्जंतुर्बंधुना भुवि मानद ॥ ११ ॥ कपिलाक्षीरमादाय यः स्नापयति मां सुत ॥ कपिलाशतदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ १२ ॥ शंखे तीर्थोदकं कृत्वा यः स्नापयति देशिकः ॥ विंदुनापि सहोमासे स्वकुलं तारयेद्धि सः ॥ १३ ॥

इंद्र मरुतगणको जीतता है. हे पुत्र ! मार्गशिरमें दूधसे स्नान कराना परम श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥ दूधसे स्नान करानेसे तेज और पुष्टिकी वृद्धि होती है और दुर्भाग्यका नाश होता है ॥ १० ॥ जो पंचामृतसे मार्गशिरमें मुझे स्नान कराता है वह मनुष्य पृथ्वीपर बंधुगणसे अशोच्य रहता है ॥ ११ ॥ हे पुत्र ! जो मुझे कपिलाके दूधसे स्नान कराता है वह मनुष्य सौ कपिलाओंके दानका फल पाता है ॥ १२ ॥ मार्गशिरमें शंखमें तीर्थका जल करके

जो मुझे स्नान कराता है वह एक बूंदसे भी अपने कुलका उद्धार करता है ॥ १३ ॥ कपिलाका दूध लाय शंखमें करके जो भक्तिसे मनुष्य मुझे स्नान कराता है वह सब तीर्थोंका फल पाता है ॥ १४ ॥ शंखमें अक्षत और कुशसहित पानी भरकर जो मुझे मार्गशिरमें स्नान कराता है वह सब तीर्थोंसे स्नान करानेका फल पाता है ॥ १५ ॥ मार्गशिरमें भक्तिपूर्वक आठ शंखोंसे जो भगवानको स्नान कराता है वह मेरे लोकमें पूज्य होता है ॥ १६ ॥

कापिलं क्षीरमादाय शंखे कृत्वा च मानवः ॥ यः स्नापयति मां भक्त्या सर्वतीर्थफलं लभेत् ॥ १४ ॥ शंखे कृत्वा तु पानीयं
साक्षतं कुशसंयुतम् ॥ यः स्नापयेत्सहोमासे सर्वतीर्थफलं लभेत् ॥ १५ ॥ शंखाष्टकेन यः स्नानं कारयेन्मार्गशीर्षके ॥ भक्त्या
भगवतः श्रेष्ठो मम लोके महीयते ॥ १६ ॥ शंखषोडशकेनाथ यः स्नापयति मे सुत ॥ स पापमुक्तः सुचिरं स्वर्गलोके
महीयते ॥ १७ ॥ चतुर्विंशतिसंख्याकैः शंखैर्यः स्नापयेच्च माम् ॥ इंद्रलोके चिरं स्थित्वा स राजा भुवि जायते ॥ १८ ॥
शंखाष्टोत्तरशतेनैव स्नापयेन्मार्गशीर्षके ॥ शंखे शंखे सुवर्णस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ १९ ॥ मार्गशीर्षे भक्तिमान्यः कृत्वा
शंखध्वनिं हि माम् ॥ स्नापयेत्पितरस्तस्य स्वर्गं तावत्प्रतिष्ठिताः ॥ २० ॥

हे पुत्र ! जो मुझे सोलह शंखोंमें स्नान कराता है वह पापसे छूटकर चिरकालतक स्वर्गमें पूजा जाता है ॥ १७ ॥ जो चौवीस शंखोंसे मुझे स्नान कराता है वह चिरकालतक इंद्रलोकमें स्थित होकर पृथ्वीका राजा होता है ॥ १८ ॥ एकसौआठ शंखोंसे मार्गशिरमें जो मुझे स्नान कराता है वह एक २ शंखसे सोलह २ माशे सुवर्णदानका फल पाता है ॥ १९ ॥ मार्गशिरमें शंख बजाकर जो मुझे स्नान कराता है उसके पितर नबतक

स्वर्गमें रहते हैं ॥ २० ॥ जो एक सहस्र और आठ शंखोंसे स्नान कराता है वह सदाकेलिये परिवारसहित मुक्ति पाता है ॥ २१ ॥ हे देवश्रेष्ठ ! जो मुझे नित्य शंखसे स्नान कराता है वह गंगास्नानका फल पाकर देवतोंकी समान आनंद करता है ॥ २२ ॥ हे पुत्र ! शंखमें जल ले "ॐ नमोनारायणाय" इस मंत्रसे जो मुझे स्नान कराता है वह सब पापोंसे छूट जाता है ॥ २३ ॥ शंखमें तिलयुक्त पादोदक करके जो मनुष्य महात्मा वैष्णवोंको देता है वह

अष्टोत्तरसहस्रं तु शंखस्नानं तु यश्चरेत् ॥ सगणो मुक्तिमाप्नोति यावदाभूतसंप्लवम् ॥ २१ ॥ नित्यं संस्नापयेद्यो मां शंखेन सुरसत्तम ॥ गंगास्नानफलं प्राप्य नित्यं नंदति देववत् ॥ २२ ॥ शंखे तोयं समादाय यः स्नापयति मां सुत ॥ नमो नाराय-णेत्युक्त्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ २३ ॥ कृत्वा पादोदकं शंखे वैष्णवानां महात्मनाम् ॥ यो ददाति तिलोन्मिश्रं चांद्रायणफलं लभेत् ॥ २४ ॥ नाद्यं तडागजं वापि वापीकूपादिकं च यत् ॥ गांगेयं जायते सर्वं जलं शंखकृतं च यत् ॥ २५ ॥ गृहीत्वा मम पादांबु शंखे कृत्वा तु वैष्णवः ॥ यो वहेच्छिरसा नित्यं स मुनिस्तपतांवरः ॥ २६ ॥ त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि मम चैवाज्ञया सुत ॥ शंखे तानि वसंतीह तस्माच्छंखो वरः स्मृतः ॥ २७ ॥ सांबुं शंखं करे धृत्वा मंत्रैरेतैस्तु वैष्णवः ॥ यः स्नापयेन्मार्गशीर्षे तुष्टस्तस्य भवाम्यहम् ॥ २८ ॥

चांद्रायणव्रतका फल पाता है ॥ २४ ॥ नदी तडाग वापी कूपादिका भी जल शंखमें करनेसे गंगाजलकी समान होता है ॥ २५ ॥ मेरे पदों (चरणों) का जल शंखमें करके जो नित्य अपने शिरपर छोडता है वह मुनि तपस्वियोंमें श्रेष्ठ है ॥ २६ ॥ हे पुत्र ! त्रिलोकीमें जो तीर्थ हैं वे सब मेरी आज्ञासे शंखमें वसते हैं, इसलिये शंख श्रेष्ठ है ॥ २७ ॥ जलसहित शंखको हाथमें धरकर जो वैष्णव मार्गशिरमें इन मंत्रोंसे स्नान कराता है उसपर

मैं प्रसन्न होता हूं ॥ २८ ॥ शंखके आदिमें चंद्र, कुक्षीमें वरुण, पृष्ठमें प्रजापति और अग्रमें गंगा और सरस्वती वसती हैं ॥ २९ ॥ उनका उच्चारण करके जो मनुष्य आलस्यरहित मुझे स्नान कराता है उसके पुण्योंकी संख्या देवता और राक्षस भी नहीं कर सक्ते ॥ ३० ॥ हे देवेश ! जो मनुष्य मेरे आगे पुष्प और अक्षतोंसे शंखका पूजन करता है उसकी लक्ष्मी रहती है ॥ ३१ ॥ सम्पूर्ण शंखपर चंदनादि लेपन कर, मेरा

शंखादौ चंद्रदैवत्यं कुक्षौ वरुणदेवता ॥ पृष्ठे प्रजापतिश्चैव अग्रे गंगा सरस्वती ॥ २९ ॥ तेषामुच्चारपूर्वं तु स्नापयेन्मामतं-
द्रितः ॥ तस्य पुण्यस्य संख्यां वै कर्तुं नैव सुरासुराः ॥ ३० ॥ पुरतो मम देवेश सपुष्पः सजलाक्षतः ॥ शंखस्त्वभ्यर्चित-
स्तिष्ठेत्तस्य श्रीः सर्वतोमुखी ॥ ३१ ॥ विलेपनेन संपूर्णं शंखं कृत्वा तु मां भजेत् ॥ तदा मे परमा प्रीतिर्भवेद्वै शतवार्षिकी
॥ ३२ ॥ शंखे कृत्वा तु पानीयं सपुष्पं सजलाक्षतम् ॥ अर्घ्यं ददाति यो मां वै तस्य पुण्यमनंतकम् ॥ ३३ ॥ अर्घ्यं कृत्वा
स्वयं शंखे यः करोति प्रदक्षिणाम् ॥ प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुंधरा ॥ ३४ ॥ भ्रामयित्वा च मे मूर्ध्नि मंदिरं शंखवा-
वारिणा ॥ प्रोक्षयेद्वैष्णवो यस्तु नाशुभं तद्गृहे भवेत् ॥ ३५ ॥ नाधयो न क्लमस्तस्य नारकं न भयं क्वचित् ॥ तस्य
पादोदकं शंखे कृतं मूर्धानमालभेत् ॥ ३६ ॥

भजन करै तो मैं उसपर सैकड़ों वर्षतक परम प्रसन्न रहता हूं ॥ ३२ ॥ पुष्पअक्षतसहित शंखमें जल भरके जो मुझे अर्घ्य देता है उसका अनंत पुण्य है ॥ ३३ ॥ शंखमें अर्घ्यकरके जो उसकी प्रदक्षिणा करता है वह सात द्वीपपर्यंत पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करता है ॥ ३४ ॥ मेरे मस्तकपर घुमाकर शंखके जलको जो अपने घरमें छिडकता है उसके घरमें कभी अशुभ नहीं होता ॥ ३५ ॥ न उसे कभी आधि और न ग्लानि होती है और न

नरकका भय होता है. विष्णुके पादोदकको शंखमें करके अपने मस्तकपर छिडकै ॥ ३६ ॥ ग्रह, राक्षस, कूष्मांड, पिशाच, सर्प, दानवादि शंखके जलको मस्तकपर देखकर दशों दिशाओंको भोगते हैं ॥ ३७ ॥ जो पुरुष आनंददायक उच्च शब्दकारक मधुर वाद्य बजाकर और सुंदर गीत गाकर, भक्तिपूर्वक मुझे स्नान कराता है वह जीता हुआही मुक्तवत् हो जाता है ॥ ३८ ॥ इतिश्रीस्कंदपुराणे मार्गशिरमाहात्म्ये पंचमोऽध्यायस्य भाषा समाप्ता ॥ ३५ ॥

ग्रहा रक्षांसि कूष्मांडपिशाचोरगदानवाः ॥ दृष्ट्वा शंखोदकं मूर्ध्नि विद्रवंति दिशो दश ॥ ३७ ॥ वादित्रनिनदैरुच्चैर्गीतमंगलनिःस्वनैः ॥ यः स्नापयति मां भक्त्या जीवन्मुक्तो भवेद्विसः ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे मार्गशीर्षमाहात्म्ये पंचमोऽध्यायः॥ ५ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ घंटानादस्य माहात्म्यं चंदनस्य तथाऽच्युत ॥ यत्फलं लभते स्वामिंस्तत्सर्वं ब्रूहि तत्त्वतः ॥१ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ स्नानार्चनक्रियाकाले घंटानादं करोति यः ॥ पुरतो मम देवेश तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २ ॥ वर्षकोटिसहस्राणि वर्षकोटिशतानि च ॥ वसते मामके लोके अप्सरोगणसेवितः ॥ ३ ॥ सर्ववाद्यमयी घंटा सर्वदेवमयी यतः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन घंटानादं तु कारयेत् ॥ ४ ॥ सर्ववाद्यमयी घंटा सर्वदा मम वल्लभा ॥ वादनाल्लभते पुण्यं यज्ञकोटिशतोद्भवम् ॥ ५ ॥

ब्रह्मा बोले ॥ हे अच्युत ! हे स्वामिन् ! घंटानाद और चंदनसे जो फल प्राप्त होता है वह सब तत्वपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले ॥ मेरे सम्मुख स्नान पूजन क्रियाके समय जो घंटा बजाता है उसका फल सुनो ॥ २ ॥ वह पुरुष सहस्रोंकरोड़ (अनेक) वर्षपर्यंत अप्सरागणोंसे सेवित मेरे लोकमें बसता है ॥ ३ ॥ घंटा सर्ववाद्यमयी और सर्वदेवमयी है अतएव सर्व यत्नपूर्वक घंटानाद करै ॥ ४ ॥ जो मेरे प्रिय सर्ववाद्यमयी घंटेको

वजाता है वह करोड़ों यज्ञोंका फल पाता है ॥ ५ ॥ हे पुत्र ! मैं घंटा, भेरी और शंखके शब्दसे नित्य सहस्रों मन्वंतर पर्यंत प्रसन्न रहता हूं इसलिये विशेषकरके पूजाकालमें नित्य घंटेका शब्द करै ॥ ६ ॥ ७ ॥ हे देवेश ! मृदंग और शंखमें ॐकारका उच्चारण करके मेरा पूजन करना मनुष्योंको निरंतर मोक्षदायक है ॥ ८ ॥ हे पुत्र ! जहां वैष्णवांसे पूजित शब्दायमान घंटा आगे स्थित है वहांही मुझे जानो ॥ ९ ॥ गरुड़ वा सुदर्शनचक्रके चिन्हसे

घंटानादः सदा कार्यः पूजाकाले विशेषतः ॥ मन्वंतरसहस्राणि मन्वंतरशतानि च ॥ ६ ॥ प्रीतो भवामि सततं घंटानादेन पुत्रक ॥ भेरीशंखनिनादेन घंटानादान्वितेनच ॥ ७ ॥ मृदंगशंखेन युतं प्रणवेन समन्वितम् ॥ अर्चनं मम देवेश सततं मोक्षदं नृणाम् ॥ ८ ॥ यत्र तिष्ठेत पुरतो घंटा नादान्विता मम ॥ अर्चिता वैष्णवैर्यत्र तत्र मां विद्धि पुत्रक ॥ ९ ॥ वैनतेयांकिता घंटा सुदर्शनयुताऽथवा ॥ममाग्रे स्थापयेद्यस्तु तस्य पापं हराम्यहम् ॥ १० ॥ मदीयार्चनवेलायां घंटानादं करोति यः ॥ नश्यंति तस्य पापानि शतजन्मार्जितान्यपि ॥ ११ ॥ स्वापकाले प्रकुर्वीत घंटानादं स्वभक्तितः ॥ ममैवार्चनवेलायां फलं कोटिगुणोद्भवम् ॥ १२ ॥ ये मामर्चंति देवेशं सुपर्णोपरि संस्थितम् ॥ शंखपद्मगदायुक्तं सचक्रं च श्रिया युतम् ॥ १३ ॥ किं करिष्यंति ते तीर्थैर्देवतानां च दर्शनैः ॥ किं यज्ञैः किं व्रतैर्वापि किं दानैः किमुपोषणैः ॥ १४ ॥

युक्त घंटेको जो पुरुष मेरे आगे निवेदन करता है मैं उसके पाप नष्ट करता हूं ॥ १० ॥ मेरी पूजाके समय जो घंटा वजाता है उसके सैंकड़ों जन्मोंके पाप नष्ट होते हैं ॥ ११ ॥ मेरे शयन करानेके समय वा मेरे पूजनके समय जो भक्तिपूर्वक घंटा वजाता है उसे करोडोंगुणा फल होता है ॥ १२ ॥ जो गरुड़पर स्थित, शंख चक्र गदा पद्मयुक्त, लक्ष्मीसहित, मुझ देवेश्वरकी पूजा करते हैं ॥ १३ ॥ उन्हें तीर्थ, देवतोंका दर्शन, यज्ञ, व्रत, दान, पान

और उपोषण आदि करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं ॥ १४ ॥ गरुड़पर स्थित मेरी नारायणकी मूर्ति जहां स्थित है वहां कलियुगमें घंटा स्थापित करनेसे करोड़ों कल्पतक मेरे स्थानमें निवास करता है ॥ १५ ॥ मेरे आगे वा प्रासाद (बड़े २ शोभायमान घर, राजभवनादि) अथवा घरमें जो घंटाको स्थापन करता है वहां सहस्रों करोड तीर्थ और देवता निवास करते हैं ॥ १६ ॥ एकादशी वा रात्रिमें गरुडपर स्थित मुझको जो वासनासहित पूजता है ॥ १७ ॥

मूर्तिर्नारायणी यत्र मामकी गरुडोपरि ॥ स्थापयित्वा कलौ याति कल्पकोटिपदं मम ॥ १५ ॥ ममाग्रे स्थापयेद्यस्तु प्रासादेऽथ गृहेऽथ वा ॥ तीर्थकोटिसहस्राणि तत्र तिष्ठंति देवताः ॥ १६ ॥ यस्तु पूजयते धन्यो गरुडोपरि संस्थितम् ॥ एकादश्यां तथा रात्रौ वासनासंयुतो मम ॥ १७ ॥ कृत्वा गीतं च नृत्यं च तारयेन्नरकात् पितॄन् ॥ पुनश्च कथयिष्यामि शृणु घंटामहं सुत ॥ १८ ॥ मम नामांकिता घंटा पुरतो या च तिष्ठति ॥ अर्चिता वैष्णवी यत्र तत्र मां विद्धि पुत्रक ॥ १९ ॥ यस्तु वादयते घंटां वैनतेय विचिह्निताम् ॥ धूपे नीराजने स्नाने पूजाकाले विलेपने ॥ २० ॥ ममाग्रे प्रत्यहं वत्स प्रत्येकं लभते फलम् ॥ मखायुतं गोयुतं च चांद्रायणशतोद्भवम् ॥ २१ ॥

और गीत और नृत्य करता है वह अपने पितरोंका नरकसे उद्धार करता है. हे पुत्र ! अब फिर घंटेका वर्णन करता हूं. सुनो ॥ १८ ॥ हे पुत्र ! वैष्णवोंसे पूजी हुई मेरे नामसे चिन्हित घंटा जहां रहती है वहांही मुझे जानो ॥ १९ ॥ हे पुत्र ! जो धूप, आरती, स्नान कराने, पूजने, चंदनादि समर्पण करनेके

समय प्रतिदिन मेरे सन्मुख गरुडके चिन्हसे युक्त घंटेको बजाता है वह दशसहस्र यज्ञ और दश सहस्र गादान और सैंकडों चांद्रायणका फल पाता है ॥ २० ॥ ॥ २१ ॥ घंटा बजानेसे विधिहीनकी हुई पूजा भी मनुष्योंको सफल होती है. मैं घंटानादसे प्रसन्न होकर अपना स्थान देता हूं ॥ २२ ॥ गरुड़ और सुदर्शन चक्रके चिन्हसे युक्त घंटा बजानेसे मैं करोड़ों जन्मोंके भयका नाश करता हूं ॥ २३ ॥ हे देवेश ! गरुड़के चिन्हसे चिन्हित घंटेको

विधिवाह्यकृता पूजा सफला जायते नृणाम् ॥ घंटानादेन तुष्टोहं प्रयच्छामि स्वकं पदम् ॥ २२ ॥ नागारिचिह्निता घंटा रथांगेन समन्विता ॥ वादनात्कुरुते नाशं जन्मकोटिभयस्य वै ॥ २३ ॥ गरुडेनांकितां घंटां दृष्ट्वाहं प्रत्यहं मुदा ॥ प्रीतिं करोमि देवेश लक्ष्मीं प्राप्य यथाऽधनः ॥ २४ ॥ घंटादंडस्य शिरसि सुचक्रं स्थापयेत्तु यः ॥ मत्प्रियं वैनतेयं वा स्थापितं भुवनत्रयम् ॥ २५ ॥ घंटानादं सचक्रं च अंतकाले शृणोति यः ॥ पापकोटियुतस्यापि नश्यंति यमकिंकराः ॥ २६ ॥ सर्वदोषाः प्रणश्यंति घंटानादेन वै सुत ॥ देवतानां सरुद्राणां पितॄणामुत्सवो भवेत् ॥ २७ ॥

देखकर मैं प्रसन्न हो ऐसी प्रीति करता हूं जैसे निर्धन लक्ष्मीको पाकर प्रसन्न होता है ॥ २४ ॥ घंटेके दंडेके शिरमें जो मेरे प्रिय चक्र वा गरुडको स्थापन करता है वह तीनों लोकोंको स्थापन करता है ॥ २५ ॥ जो चक्रयुक्त घंटेका शब्द अंतसमयमें सुनता है यद्यपि उसने करोडों पाप किये हों तो भी यमदूत उसके सन्मुख नहीं आते ॥ २६ ॥ हे पुत्र ! घंटानादसे सब दोष नष्ट होते हैं. और उससे देवता रुद्र और पितरोंका उत्सव

होता है ॥ २७ ॥ गरुड़के चिन्हसे रहित और चक्रके भी चिन्हसे रहित घंटेको बजानेसे भी मैं भक्तोंपर प्रसन्न होता हूं ॥ २८ ॥ जिसके घर गरुडसे चिन्हित घंटा रहती है उसके घर सर्प और अग्नि तथा बिजलीका भय नहीं होता ॥ २९ ॥ जिसके घर मेरे आगे न घंटा है न शंख है वह भगवानका भक्त और प्रिय कैसे होगा ॥ ३० ॥ हे पुत्र ! अब तुझसे मैं चंदनका माहात्म्य कहता हूं, जिससे मेरी अत्यंत प्रीति होती है, इसमें

अभावे वैनतेयस्य चक्रस्यापि न संशयः ॥ घंटानादेन भक्तानां प्रसादं प्रकरोम्यहम् ॥ २८ ॥ गृहे यस्मिन् भवेन्नित्यं घंटाना-गारिसंयुता ॥ सर्पाणां न भयं तत्र नाग्निविद्युत्समुद्भवम् ॥ २९ ॥ यस्य घंटा गृहे नास्ति शंखो न पुरतो मम ॥ कथं भागवतो ज्ञेयः कथं भवति वल्लभः ॥ ३० ॥ चंदनस्य प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं तव पुत्रक ॥ यस्मिन्कृते भवेत्प्रीतिर्ममात्यंतं न संशयः ॥ ३१ ॥ सचंदनं सकुसुमं कर्पूरागरुमिश्रितम् ॥ मृगनाभिसमायुक्तं जातीफलसमन्वितम् ॥ ३२ ॥ तुलसीचंदनोपेतं ममात्यंतसुखावहम् ॥ योददाति हि मां नित्यं तुलसीकाष्ठसंभवम् ॥ ३३ ॥ युगानि वसते स्वर्गे ह्यनंतानि नरोत्तमः ॥ महाविष्णोः कलौ भक्त्या दत्त्वा तुलसिचंदनम् ॥ ३४ ॥ अर्चयेन्मालतीपुष्पैर्न भूयः स्तनपो भवेत् ॥ तुलसीकाष्ठसंभूतं चंदनं यच्छते मम ॥ ३५ ॥

संदेह नहीं ॥ ३१ ॥ पुष्प कर्पूर अगरु कस्तूरी जायफल इन्होंसे मिश्रित चंदन अथवा तुलसीका चंदन मुझे अत्यंत सुखदायी है, जो नित्य तुलसीके काष्ठका चंदन मेरेको अर्पण करता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ वह मनुष्य श्रेष्ठ कलियुगमें महाविष्णुकी भक्तिसे अनंत युगोंपर्यंत स्वर्गमें बसता है ॥ ३४ ॥ चमेलीके पुष्पोंसे

पूजन करके फिर स्तनोंका पीनेवाला नहीं होता अर्थात् उसको पुनर्जन्म नहीं होता. जो तुलसीकाष्ठका चंदन मुझे देता है ॥ ३५ ॥ मैं उसके सैंकडों पूर्वजन्मोंके पातकोंको जलाता हूं. तुलसीके काष्ठका चंदन सब देवता और पितरोंको अभीष्ट है, और मुझे तो विशेपकरके प्रिय है. श्रीखंड चंदन और काला अगरु तवतक श्रेष्ठ है, जबतक पवित्र तुलसीकाष्ठचंदन नहीं मिलता. तथा कस्तूरी वा कपूरकी सुगंधि तभीतक श्रेष्ठ है, जबतक मुझे पवित्र तुलसीकाष्ठका चंदन (न मिलनेके

दहामि पातकं सर्वं पूर्वजन्मशतैः कृतम् ॥ सर्वेषामेव देवाना तुलसीकाष्ठचंदनम् ॥ ३६॥ पितॄणा च विशेषेण सदाऽभीष्टं यथा मम ॥ श्रीखंडं चंदनं तावच्छ्रेष्ठं कृष्णागुरुं तथा ॥ ३७ ॥ यावन्न दृश्यते पुण्यं तुलसीकाष्ठचंदनम् ॥ तावत्कस्तूरिकामोदः कर्पूरस्य सुगंधिता ॥ ३८ ॥ यावन्न दीयते मह्यं तुलसीकाष्ठचंदनम् ॥ कलौ यच्छंति ये मह्यं तुलसीकाष्ठचंदनम् ॥ मार्गशीर्षे शुभे मासे ते कृतार्था न संशयः ॥ ३९ ॥ यो हि भागवतो भूत्वा कलौ तुलसिचंदनम् ॥ नार्पयेद्वै सहोमासे नासौ भागवतो नरः ॥ ४० ॥ कुंकुमागुरुश्रीखंडकर्दमैर्मम विग्रहम् ॥ आलिंपेद्वै सहोमासे कल्पकोटिवसेद्दिवि ॥ ४१ ॥ कर्पूरागुरुमिश्रेण चंदनेनानुलिंपयेत् ॥ मृगदर्पं विशेषेण अभीष्टं च सदा मम ॥ ४२ ॥

कारण) नहीं दिया जाता ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ कलियुगमें जो मुझे मार्गशिरमें तुलसीके काष्ठका चंदन देते हैं वे कृतार्थ होते हैं. इसमें संदेह नहीं. ॥ ३९ ॥ जो भगवद्भक्त होकर कलियुगमें मार्गशिर मासमें तुलसीकाष्ठका चंदन अर्पण नहीं करता वह भगवद्भक्त नहीं है ॥ ४० ॥ केशर अगरु चंदनादिसे मार्गशिरमें जो मेरे शरीरको लेप करता है वह करोडों कल्पोंतक स्वर्गमें वसता है ॥ ४१ ॥ कपुर अगरुमिश्रित चंदन मेरे लेपन करै और विशेपकरके कस्तुरी

मुझे सदा प्रिय है ॥ ४२ ॥ मार्गशिरमें शंखमें चंदन करके जो मेरेको लेपन करता है उसके उपर मैं सैंकडों वर्षोंतक प्रसन्न रहता हूं ॥ ४३ ॥ मार्गशिरमें नित्य तुलसीदल या आमलेसे भक्तिपूर्वक जो मुझे पूजन करता है उसे वांछित फल प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥ इतिश्रीस्कंदपुराणे मार्गशिरमाहात्म्य भाषायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ब्रह्मा बोले ॥ हे देवेश ! अब पुष्पोंका माहात्म्य अर्थात् जिस २ पुष्पसे जो २ फल प्राप्त होता है सो कहिये ॥ १ ॥

विलेपयति यो मा वै शंखे कृत्वा तु चंदनं ॥ मार्गशीर्षे तदा प्रीतिं करोमि शतवार्षिकीम् ॥ ४३ ॥ सेवते तुलसीपत्रैर्नित्यमामलकैश्च यः ॥ मार्गशीर्षे सदा भक्त्या स लभेद्वांछितं फलम् ॥४४॥ इतिश्रीस्कंदपुराणे मार्गशीर्षमाहात्म्ये षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ माहात्म्यं वद देवेश पुष्पजातिसमुद्भवम् ॥ येन येन च पुष्पेण यत्फलं लभते नरः ॥ १ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं पुष्पसंभवम् ॥ येन पुष्पेण मे प्रीतिर्भवेत्सम्यङ् न संशयः ॥ २ ॥ मल्लिका मालती चैव यूथिका चातिमुक्तका ॥ पाटला करवीरं च जयंती विजया तथा ॥३॥ कुब्जकस्तबकश्चैव कर्णिकारं कुरंटकः ॥ चंपको चातकः कुंदो बाणः कर्चूरमल्लिका ॥ ४ ॥

श्रीभगवान् बोले ॥ हे पुत्र ! जिस २ पुष्पसे मेरी अच्छी प्रकार प्रीति होती है, मैं उसका माहात्म्य कहता हूं सुनो ॥ २ ॥ मल्लिका (वेला), चमेली जूही, तेंदुआ, पाठर, करवीर (कनइल), रनवास, विजया (भांग), ॥ ३ ॥ कुब्जक, कनेर, पिलापियावांसा, चंपा, चातक, कुन्द, बाण, मल्लिका, कचूर ॥ ४ ॥

अशोक, तिलक, दूसरी जूही ये पुष्प मेरे पूजनमें प्रशंसित हैं ॥ ५ ॥ केतकीके पत्ते और फूल, भृंगराज (भंगरा), तुलसीके पत्ते और फूल यह मेरी शीघ्र प्रीति करनेवाले हैं ॥ ६ ॥ जलसे उत्पन्न–रक्त–नील–श्वेत–कमल मार्गशिरमें मुझे अत्यंत प्रिय हैं ॥ ७ ॥ हे पुत्र ! मुझे वे पुष्प प्रिय हैं जो सुंदर रूप रस और गंधयुक्त हैं ॥ ८ ॥ निर्गंध पुष्प और केतकीको छोडकर अन्य सुगंधित पुष्प ॥ ९ ॥ वाण, चंपा, अशोक, करवीर, जूही, पारिभद्र (देवदारू), पाटल (गुलाब), मौलसिरी,

अशोकस्तिलकश्चैव तथैवापरयूथिकः ॥ अमी पुष्पप्रकारास्तु शस्ता मे पूजने सुत ॥ ५ ॥ केतकीपत्रपुष्पं च भृंगराजस्तथैव च ॥ तुलसीपत्रपुष्पं च सद्यः प्रीतिकरं मम ॥ ६ ॥ पद्मान्यंबुसमुत्थानि रक्तनीलोत्पले तथा ॥ सितोत्पलं सहोमासे ममात्यंतं हि वल्लभम् ॥ ७ ॥ तान्येव च प्रशस्तानि कुसुमानि च मे सुत ॥ यानि स्युर्वर्णयुक्तानि रसगंधयुतानि च ॥ ८ ॥ निर्गंधान्यपि शस्तानि कुसुमानि मतानि मे ॥ सुरभीणि तथाऽन्यानि वर्जयित्वा तु केतकीम् ॥ ९ ॥ वाणं च चंपकाशोकं करवीरं च यूथिका ॥ पारिभद्रं पाटला च बकुलं गिरिशालिनी ॥१०॥ बिल्वपत्रं शमीपत्रं पत्रं भृंगिरजस्य च ॥ तमालामलकीपत्रं शस्तं मे पूजने सुत ॥ ११ ॥ पुष्पैररण्यसंभूतैः पत्रैर्वा गिरिसंभवैः ॥ अपर्युषितनिश्छिद्रैः प्रोषितैर्जंतुवर्जितैः ॥ १२ ॥

॥ १९ ॥

गिरिशालिनी ॥ १० ॥ वेलपत्र, शमीपत्र, भृंगराजके पत्ते, तमाल (पत्रज), आमलेके पत्र, ये मेरे पूजनमें प्रशंसित हैं ॥ ११ ॥ वन वा पर्वतसे उत्पन्न, अपर्युषित (जो वासी न हो), छिद्ररहित, उत्तम विकसित जंतुवर्जित पुष्पोंसे पूजन करै. ॥ १२ ॥

और उपवनोंमें उत्पन्न पुष्पपत्रोंसे मेरा पूजन करै. विशेष जातिके पुष्पोंसे पूजन करनेमें विशेष पुण्य होता है ॥ १३ ॥ तपशील गुणसंपन्न वेदपारग सुपात्र ब्राह्मणको दशसुवर्ण (१६० माशे सोना) देनेसे जो फल मिलता है ॥ १४ ॥ वही फल मार्गशिरमें पुष्पदानसे होता है. और जो एक द्रोण पुष्पीके पुष्प मेरेको निवेदन करता है ॥ १५ ॥ उसे दश सुवर्णके दानसे अधिक फल होता है. पुष्पसे दूसरे पुष्पोंमें जो भेद है वह मुझसे सुनो ॥ १६ ॥

अथारामोद्भवैर्वापि पुष्पैः संपूजयेच्च माम् ॥ पुष्पजातिविशेषेण भवेत्पुण्यं विशेषतः ॥ १३ ॥ तपःशीलगुणोपेते पात्रे वेदस्य पारगे ॥ दश दत्त्वा सुवर्णानि यत्फलं लभते नरः ॥ १४ ॥ तत्फलं लभते मर्त्यः सहे कुसुमदानतः ॥ द्रोणपुष्पैस्तथैकस्मिन्मह्यं च विनिवेदिते ॥ १५ ॥ दश दत्त्वा सुवर्णानि फलं तदधिकं सुत ॥ पुष्पात्पुष्पांतरे भेदो यथासीत्तन्निबोध मे ॥ १६ ॥ द्रोणपुष्पसहस्रेभ्यः खादिरं तु विशिष्यते ॥ खादिरात्पुष्पसाहस्राच्छमीपुष्पं विशिष्यते ॥ १७ ॥ शमीपुष्पसहस्रेभ्यो बिल्वपुष्पं विशिष्यते ॥ बिल्वपुष्पसहस्रेभ्यो बकपुष्पं विशिष्यते ॥ १८ ॥ बकपुष्पसहस्रेभ्यो नद्यावर्तं विशिष्यते ॥ नद्यावर्तसहस्राद्धि करवीरं विशिष्यते ॥ १९ ॥ करवीरसहस्रस्य कुसुमं श्वेतमुत्तमम् ॥ करवीरश्वेतपुष्पात् पालाशं पुष्पमुत्तमम् ॥ २० ॥

द्रोणपुष्पीके सहस्र पुष्पोंसे एक खदिरका पुष्प विशेष है. सहस्र खदिरपुष्पोंसे एक शमीपुष्प विशेष है ॥ १७ ॥ सहस्र शमीपुष्पोंसे एक बेलका पुष्प विशेष है. बेलके सहस्र पुष्पोंसे एक बकपुष्प विशेष है ॥ १८ ॥ सहस्र बकपुष्पोंसे एक नद्यावर्त विशेष है. सहस्र नद्यावर्तोंसे एक करवीर पुष्प विशेष है ॥ १९ ॥ सहस्र करवीरपुष्पोंसे एक श्वेत करवीरपुष्प विशेष है और श्वेत करवीरपुष्पसे ढाकका पुष्प उत्तम है ॥ २० ॥

ढाकके सहस्र फूलोंसे एक कुशपुष्प उत्तम है. सहस्र कुशपुष्पोंसे एक वनमाला विशेप है ॥ २१ ॥ सहस्र वनमालासे एक चंपकपुष्प विशेष है, सौ चंपकपुष्पोंसे एक अशोकपुष्प उत्तम है ॥ २२ ॥ सहस्र अशोकपुष्पोंसे एक सेवतीका पुष्प उत्तम है. सहस्र सेवतीके फूलोंसे एक कुजकका पुष्प उत्तम है ॥ २३ ॥ सहस्र कुजपुष्पोंसे एक मालतीका पुष्प उत्तम है. सहस्र मालतीपुष्पोंसे एक संध्यापुष्प उत्तम है ॥ २४ ॥ सहस्र पलाशपुष्पोंसे एक मालतीपुष्प उत्तम है. सहस्र मालतीपुष्पोंसे एक

पालाशपुष्पसाहस्रात्कुशपुष्पं विशिष्यते ॥ कुशपुष्पसहस्राद्धि वनमाला विशिष्यते ॥ २१ ॥ वनमालासहस्राद्धि चंपकं च विशिष्यते ॥ चंपकस्य पुष्पशतादशोकं पुष्पमुत्तमम् ॥ २२ ॥ अशोकपुष्पसाहस्राच्छेवंतीपुष्पमुत्तमम् ॥ शेवंतीपुष्पसाहस्रात्कुजकं पुष्पमुत्तमम् ॥ २३ ॥ कुजपुष्पसहस्राद्धि मालतीपुष्पमुत्तमम् ॥ मालतीपुष्पसाहस्रात्संध्यापुष्पं विशिष्यते ॥ २४ ॥ पलाशस्य सहस्राद्धि मालतीपुष्पमुत्तमम् ॥ मालतीपुष्पसाहस्रात्त्रिसंध्यापुष्पमुत्तमम् ॥ २५ ॥ त्रिसंध्यारक्तसाहस्रात्त्रिसंध्याश्वेतमुत्तमम् ॥ त्रिसंध्याश्वेतसाहस्रात्कुंदपुष्पं विशिष्यते ॥ २६ ॥ कुंदपुष्पसहस्राद्धि जातीपुष्पं विशिष्यते ॥ सर्वासां पुष्पजातीनां जातीपुष्पमिहोत्तमम् ॥ २७ ॥ जातीपुष्पसहस्रेण यच्छेन्मालां सुशोभनाम् ॥ मह्यं यो विधिवद्द्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २८ ॥

त्रिसंध्यापुष्प उत्तम है ॥ २५ ॥ त्रिसंध्याके सहस्र लाल फूलोंसे एक श्वेत त्रिसंध्याका पुष्प उत्तम है सहस्र श्वेतत्रिसंध्यापुष्पोंसे एक कुंदपुष्प विशेष है ॥ २६ ॥ सहस्र कुंदपुष्पोंसे एक जातीपुष्प (जायफलका फूल) विशेप है. सब जातियोंके फूलोंसे एक जातिपुष्प उत्तम है ॥ २७ ॥ सहस्र जातिपुष्पोंकी सुंदर माला जो मेरेको अर्पण विधिपूर्वक करता है. उसके पुण्यका फल सुनो ॥ २८ ॥

वह मेरे समान बलवान होकर सहस्रों करोड़ वर्षोंतक मेरे लोकमें वसता है ॥ २९ ॥ मेरे पुजनके निमित्त जिन वृक्ष वा वेलीके पुष्प प्रशंसित हैं उनके पत्रभी प्रशंसित हैं. और पत्रोंके न होनेपर फल प्रशंसित हैं ॥ ३० ॥ इन पत्रपुष्पफलादिकोंसे मुझे पूजता हुआ पुरुष एक २ पुष्पादिसे दश २ सुवर्णका फल पाता है ॥ ३१ ॥ इन जातियोंके पुष्पोंसे मार्गशिरमें जो मुझे पूजते हैं मैं उन्हें प्रसन्न होकर भक्ति देता हूं. इसमें संदेह नहीं ॥ ३२ ॥ वह धन

कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥ मत्पुरे वसते नित्यं मम तुल्यपराक्रमः ॥ २९ ॥ येषां संति च पुष्पाणि प्रशस्तानि ममार्चने ॥ तेषां पत्राणि शस्तानि तदभावे फलानि च ॥ ३० ॥ एतैः पत्रैश्च पुष्पैश्च फलैश्चापि तथा हि माम् ॥ अर्चन्दशसुवर्णस्य प्रत्येकं फलमाप्नुयात् ॥ ३१ ॥ एताभिः पुष्पजातीभिः सहोमासेऽर्चयंति ये ॥ भक्तिं ददामि तेषां वै तुष्टः सन्नात्र संशयः ॥ ३२ ॥ धनं पुत्रांस्तथा दारान् यत्किंचिद्वांछते हि सः ॥ तत्तद्ददामि देवेश पुष्पैरेभिः प्रतोषितः ॥ ३३ ॥ इतिश्रीस्कंदपुराणे मार्गशीर्षमाहात्म्ये सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ श्रीमत्तुलसिमाहात्म्यं यथावद्वर्णय प्रभो ॥ यस्याः सन्निधिमात्रेण प्रीतिर्भवति तेऽधिका ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मणिकांचनपुष्पाणि तथा मुक्तमयानि च ॥ तुलसीपत्रदानस्य कला नार्हंति षोडशीम् ॥ २ ॥

पुत्र स्त्री आदि जिसकी इच्छा करता है, इन पुष्पोंसे पूजनेके कारण मैं वह सब उसे देता हूं. ॥ ३३ ॥ इतिश्रीस्कंदपुराणे मार्गशीर्षमाहात्म्ये भाषायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ब्रह्मा बोले ॥ हे प्रभो ! श्रीमती तुलसीजीके माहात्म्य यथावत् वर्णन कीजिये जिसके समीपमें रहनेमात्रसे आपकी अधिक प्रीति होती है ॥ १ ॥ श्रीभगवान बोले ॥ मणिके सुवर्णपुष्पका और मोतीके पुष्पोंका दान तुलसीदलके दानसे सोलह वां भागभी नहीं हैं ॥ २ ॥

तुलसीकी मंजरीसे जो मेरा पूजन करते हैं वे फिर गर्भमें नहीं आते और मुक्तिको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ३ ॥ हे पुत्र ! तुलसीको स्थापन करके उसके दलोंसे जो मुझे पूजते हैं वे स्वर्ग और मेरे घर श्वेतद्वीपमें आनंद करते हैं ॥ ४ ॥ जो एकबारभी सुगंधित, निर्मल, विना टूटे हुए, तुलसीदलोंसे मुझे पूजता है उसके गुप्त पापोंकोभी देखकर यमराज उसे शुद्ध करदेते हैं ॥ ५ ॥ एकादशी और पवित्र दिनोंमें मेरे पूजनके निमित्त जिनके यहां तुलसी नहीं है इनके तारुण्यको और

तुलसीमंजरीभिर्यः कुर्याद्वै मम पूजनम् ॥ न स गर्भगृहान्यायान्मुक्तिभागी भवेन्नरः ॥ ३ ॥ आरोप्य तुलसीं वत्स पूजयेत्तद्दलैश्च माम् ॥ दिवि संमोदमानास्ते श्वेतद्वीपे च मे गृहे ॥ ४ ॥ श्रीमत्तुलस्यार्चयते सकृद्धि मां पत्रैः सुगंधैर्विमलै-रखंडितैः ॥ यत्तस्य पापं पटसंस्थितं तदा निरीक्षयित्वा परिमार्जयेद्यमः ॥ ५ ॥ तुलसी न येषां मम पूजनार्थं संपादितैकाद-शिपुण्यवासरे ॥ धिग्यौवनं जीवितमर्थसंततिस्तेषां सुखं नेह च दृश्यते परे ॥ ६ ॥ लिंगमभ्यर्चितं दृष्ट्वा सहोमासे च मामकम् ॥ तुलसीपत्रनिकरैर्मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥ ७ ॥ नित्यमभ्यर्चयेद्यो वै तुलस्या मां रमेश्वरम् ॥ महापापानि नश्यंति किं पुनश्चोपपातकम् ॥ ८ ॥ वर्ज्यं पर्युषितं पुष्पं वर्ज्यं पर्युषितं जलम् ॥ न वर्ज्यं तुलसीपत्रं न वर्ज्यं जाह्नवीजलम् ॥ ९ ॥ तावद्गर्जंति पुष्पाणि मालत्यादीनि भो सुत ॥ यावन्न प्राप्यते पुण्या तुलसी मम वल्लभा ॥ १० ॥

जीवनको धिक्कार है, उनको इसलोक वा परलोकमें धन, संतान और सुख नहीं होता ॥ ६ ॥ तुलसीपत्रोंसे पूजते हुए मेरे लिंग (चिन्ह—मूर्ति) को मार्गशिरमें देखकर ब्रह्महत्यासे छूटता है ॥ ७ ॥ जो मुझ लक्ष्मीपतीको तुलसीसे पूजन करता है, उनके बड़े २ पापभी नष्ट हो जाते हैं फिर छोटे पातक क्या नष्ट न होंगे ॥ ८ ॥ मेरे पूजनमें वासी पुष्प और जल वर्जित हैं, परंतु वासी तुलसीदल और गंगाजल वर्जित नहीं ॥ ९ ॥ हे पुत्र ! मालती आदिके पुष्प तबहीं-

तक लेने चाहिये जबतक मेरी प्रिय पवित्र तुलसी न मिले ॥ १० ॥ जो मनुष्य एकबारभी मुझे बेलपत्रसे पूजता है वह निर्भय मुक्तिभागी होकर मेरे समीपमें प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ बेलपत्र, शमीपत्र, जातीपत्र, कमल, कौस्तुभमणि, इन सबोंसे तुलसीदल मुझे अधिक प्रिय है ॥ १२ ॥ हृदयको आनंद देनेवाली मंजरीयुक्त विना खंडित तुलसीदल क्षीरसागरमें उत्पन्न कमलको समान सदा मुझे प्रिय है ॥ १३ ॥ कृष्ण तुलसी और श्वेत तुलसी दोनों

सकृदभ्यर्चयेद्योमा विल्वपत्रेण मानवः ॥ मुक्तिभागी निरातंको मम पार्श्वगतो भवेत् ॥ ११ ॥ बिल्वपत्राच्छमीपत्राज्जातीपत्रा-
त्सरोरुहात् ॥ वल्लभं तुलसीपत्रं कौस्तुभादधिकं मम ॥ १२ ॥ अभिन्नपत्रा तुलसी हृद्या मंजरिसंयुता ॥ क्षीरोदार्णवसंभूता
पद्मैवेयं सदा मम ॥ १३ ॥ अकृष्णाप्यथवा कृष्णा तुलसी मम वल्लभा ॥ सिता वाप्यसिता वापि द्वादशी वल्लभा यथा
॥ १४ ॥ गृहीत्वा तुलसीपत्रं भक्त्या यो मां समर्चयेत् ॥ अर्चितं तेन सकलं सदेवासुरमानुषम् ॥ १५ ॥ तावद्गर्जंति रत्नानि
कौस्तुभादीन्यनंतशः ॥ यावन्न प्राप्यते कृष्णतुलसीकृष्णमंजरी ॥ १६ ॥ कृष्णं कृष्णतुलस्याहि यो भक्त्या पूजयेन्नरः ॥ स
याति भुवनं शुभ्रं यत्र विष्णुः श्रिया सह ॥ १७ ॥

मुझे प्रिय हैं, जैसे शुक्लपक्षकी और कृष्णपक्षकी दोनों द्वादशी मुझे प्रिय हैं ॥ १४ ॥ जो तुलसीपत्र लेकर मेरा पूजन करता है वह संपूर्ण देव, असुर और मनुष्योंका पूजन करता है ॥ १५ ॥ अनेक रत्न और कौस्तुभादिमणि तवहीतक श्रेष्ठ हैं जवतक काली तुलसीकी काली मंजरी नहीं मिलती ॥ १६ ॥ जो मनुष्य कृष्ण तुलसीसे भक्तिपूर्वक कृष्णका पूजन करता है वह उन उज्ज्वल लोकोंको जाता है, जहां लक्ष्मीसहित विष्णु रहते हैं ॥ १७ ॥

मेरे पूजनके अर्थ जो भिक्षुकोंको तुलसीदल देते हैं अथवा भक्तिमान् पुरुषोंको तुलसी देते हैं वे मोक्ष पाते हैं ॥ १८ ॥ कृष्ण वा गौर तुलसीसे जो मेरा पूजन करता है वह मनुष्य शरीर छोड़कर सदाके लिये वैष्णवी गतिको पाता है ॥ १९ ॥ ब्रह्मा बोले ॥ हे केशव ! धूप और दीपके दानसे मनुष्य किस फलको प्राप्त होता है. यह मुझसे ठीक २ कहिये ॥ २० ॥ श्रीभगवान बोले ॥ हे पुत्र ! सुन, मैं धूपदानका फल कहता हूं और

ममार्चनार्थं भिक्षूणां यच्छंति तुलसीदलम् ॥ अन्येषामपि भक्तानां यांति ते पदमव्ययम् ॥ १८ ॥ तुलसी कृष्णगौरा या तया
यो मां समर्चयेत् ॥ नरो याति तनुं त्यक्त्वा वैष्णवीं शाश्वतीं गतिम् ॥ १९ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ धूपदानस्य माहात्म्यं दीपस्यापि
च केशव ॥ यत्फलं लभते मर्त्यस्तन्मे ब्रूहि यथार्थतः ॥ २० ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि धूपदानस्य
यत्फलम् ॥ दीपदानस्य माहात्म्यं मम प्रीतिकरं परम् ॥ २१ ॥ अगुरुं च सकर्पूरं दिव्यचंदनसौरभम् ॥ दत्त्वा मां वै सहोमासे
कुलानां तारयेच्छतम् ॥ २२ ॥ कृष्णागुरुसमुत्थेन धूपेन च ममालयम् ॥ धूपयेद्वैष्णवो यस्तु स मुक्तो नरकार्णवात् ॥ २३ ॥
माहिषं गुग्गुलं यस्तु आज्ययुक्तं सशर्करम् ॥ धूपं ददाति यो वै मां तस्येच्छां प्रददाम्यहम् ॥ २४ ॥

मेरी प्रीतिकरनेवाला दीपदानकाभी माहात्म्य कहता हूं ॥ २१ ॥ अगरु, कर्पूर, दिव्यचंदनकी सुगंधि मार्गशिरमें मुझे देकर सौ कुलोंका उद्धार करता है ॥ २२ ॥ जो वैष्णव काले अगरुकी धूपसे जो मेरे मंदिरको सुगंधित करता है. वह नरकसागरसे छूटता है ॥ २३ ॥ भैंसके घृत और शर्करायुक्त गुगलसे

जो मुझे धूप देता है मैं उसकी मनोवांछा पूर्ण करता हूं ॥ २४ ॥ धूप किया हुआ गूगल सब रोगोंको नाश करता है और अगरु नानाप्रकारकी कामनाओंके पूर्ण करता है ॥ २५ ॥ अगरुकी धूप शरीर और घरको पवित्र करती है. और सब रसोंकी धूप यक्ष और राक्षसोंको नाश करती है. ॥ २६ ॥ जातीपुष्प, इलायची, गुग्गुल, हड, कूट, सर्जरस (औषधि), गुड़, सेला (औषधि), छड, नख, यह दशअंगवाली धूप है ॥ २७ ॥ जो मेरे

गुग्गुलो हंत्यशेषाणि अरिष्टानि च धूपितः ॥ कामान्नानाविधांश्चैव अगुरुः संप्रयच्छति ॥ २५ ॥ देहं गेहं पुनात्येव धूपस्त्व-गुरुसंभवः ॥ नाशयेद्यक्षरक्षांसि धूपः सर्वरसोद्भवः ॥ २६ ॥ जातीपुष्पमथैला च गुग्गुलश्च हरीतकी ॥ कूटः सर्जरसश्चैव गुडसेला छडस्तथा ॥ नखयुक्तानि चैतानि दशांगो धूप उच्यते ॥ २७ ॥ धूपं दशांगं यदि चेत्करोति मासे सहे मे अतिवल्लभे च ॥ ददामि कामानपि दुर्लभानपि बलं च पुष्टिं सुतदारभक्तीः ॥ २८ ॥ मुस्ताधूपे मानुषाणां प्रियत्वं मांगल्यकं वश्यकरं गुडस्य वै ॥ कुर्यात्सहोमासि ममाग्रतो यो विहाय पापानि स मां समाप्नुयात् ॥ २९ ॥ न भयं विद्यते तस्य दिव्यभौमांत-रिक्षजम् ॥ मम धूपावशेषेण यस्यांगं परिमार्जितम् ॥ ३० ॥

अतिप्रिय मार्गशिर मासमें दशांग धूप करता है उसे मैं दुर्लभ कामना, बल, पुष्टि, पुत्र, स्त्री और भक्ति देता हूं ॥ २८ ॥ मुस्ता (मोथा) की धूपसे मनुष्योंको प्रियत्व और आनंद होता है और उससे दूसरे मनुष्य अपने वशमें हो जाते हैं और यही फल गुड़की धूपका है जो यह धूप मेरे आगे करता है. वह निष्पाप होकर मुझको प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ मुझको धूप देकर शेष धूपको जो अपने अंगसे मलता है उसको स्वर्ग भूमि और अंतरिक्ष संबंधी कोइ

भय नहीं होता ॥ ३० ॥ जो मार्गशिरमें नित्य मेरे सन्मुख धूप करता है उसे कोई आपत्ति प्राप्त नहीं होती और संपूर्ण संपत्ति प्राप्त होती हैं ॥ ३१ ॥ धूप सुंदर रूप धारण करती है, धूप पवित्र और उत्तम है. वनस्पतियोंका रस परम पावन दिव्य और पवित्र है ॥ ३२ ॥ अब दीपकका उत्तम माहात्म्य कहता हूं. जिस दीपकके करनेसे मनुष्य वैकुंठ पाता है इसमें संशय नहीं ॥ ३३ ॥ जो कपूरसंयुक्त घृतसे बहुत बत्तियोंकी आरती करते हैं वे करोड़ों कल्पोंतक

न चापद्धिद्यते तस्य भवंति संपदोऽखिलाः ॥ धूपे कृते सहोमासे ममाग्रे श्रद्धयाऽनिशम् ॥ ३१ ॥ धूपः सुरूपतां धत्ते धूपः पावनमुत्तमम् ॥ वनस्पतिरसो दिव्यः परमः पावनः शुचिः ॥ ३२ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि दीपमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ यस्मिन्कृते नरो याति वैकुंठं नात्र संशयः ॥ ३३ ॥ बहुवर्तिसमायुक्तं घृतपूरसमन्वितम् ॥ कुर्यादारार्तिकं यो वै कल्पकोटिदिवं वसेत् ॥ ३४ ॥ नीराजनं तु यः पश्येत्सहोमासे ममाग्रतः ॥ सप्तजन्म भवेद्विप्रो ह्यंते च परमं पदम् ॥ ३५ ॥ कर्पूरेण तु यः कुर्याद्भक्त्या चैव ममाग्रतः ॥ आरार्तिकं द्विजश्रेष्ठ प्रविशेन्मामनंतकम् ॥ ३६ ॥ मंत्रहीनं क्रियाहीनं यत्कृतं पूजनं मम ॥ सर्वं संपूर्णतामेति कृते नीराजने सुत ॥ ३७ ॥

स्वर्गमें वसते हैं ॥ ३४ ॥ मार्गशिरमें जो मेरे आगे आरती देखता है वह सात जन्मतक ब्राह्मण होकर मुक्ति पाता है ॥ ३५ ॥ जो ब्राह्मण भक्तिपूर्वक मेरे आगे कपूरसे आरती करता है अंतरहित मुझे प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ मंत्रहीन क्रियाहीन किया और हुआ पूजन भी आरती करनेसे पूरा फल

देता है ॥ ३७ ॥ मार्गशिरमें जो कर्पूरसे मेरा दीपक बालता है वह अश्वमेधका फल पाकर कुलका उद्धार करता है ॥ ३८ ॥ मेरे और ब्राह्मणोंको आगे अथवा चौराहेमें जो दीपक बालता है वह मनुष्य बुद्धिमान् ज्ञानवान और चक्षुमान् होता है ॥ ३९ ॥ घृत वा तैलसे जो मनुष्य मार्गशिरमें मेरे आगे दीपक बालता है उसके पुण्योंका फल सुनो ॥ ४० ॥ वह सब पापोंसे छूटकर सहस्रों सूर्यकी समान प्रकाशमान होकर ज्योतिष्मान्

यः करोति सहोमासे कर्पूरेण च दीपकम् ॥ अश्वमेधमवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् ॥ ३८ ॥ ममाग्रे वै द्विजानां च दीपं दद्या-च्चतुष्पथे ॥ मेधावी ज्ञानसंपन्नश्चक्षुष्मान् जायते नरः ॥३९॥ घृतेन वाथ तैलेन दीपं प्रज्वालयेन्नरः ॥ सहोमासे ममाग्रे च तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ४० ॥ विहाय सकलं पापं सहस्रादित्यसन्निभः ॥ ज्योतिष्मता विमानेन मम लोके महीयते ॥ ४१ ॥ तस्मा-त्सर्वप्रयत्नेन दीपं दद्याद्विचक्षणः ॥ तं च दत्त्वा विहिंसेद्यः स पतेन्नरके ध्रुवम् ॥ ४२ ॥ दीपं यो वै हरेत्पापी लोभाद्द्वेषाद्द्विजोत्तम ॥ तद्दीपहरणात्सोऽपि मूकोंधश्च प्रजायते ॥ ४३ ॥ ॥ इतिश्रीस्कंदपुराणे मार्गशीर्षमाहात्म्ये विष्णुब्रह्मसंवादेअष्टमोऽध्यायः ॥८॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ नैवेद्यस्य विधिं ब्रूहि देव मे तत्वतः प्रभो ॥ अन्नं कतिविधं चेष्टं व्यंजनादीन्यशेषतः ॥ १ ॥

विमानपर बैठकर मेरे लोकको प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥ इसकारण विचक्षण अर्थात् चतुर मनुष्य सब प्रयत्न करके दीप दान करे, दीपक बालकर उसे बुझावे तो निश्चय नरकमें गिरैं ॥ ४२ ॥ जो पापी लोभसे दीपकको बुझाता है तथा द्वेषसे दूसरेका बाला हुआ दीपक बुझाता है वह गूंगा और अंधा होता है ॥ ४३ ॥ इतिश्रीमार्गशिरमाहात्म्यभाषायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ब्रह्मा बोले ॥ हे देव ! हे प्रभो ! मुझसे तत्वपूर्वक नैवेद्यकी विधि कहिये नैवेद्यमें

कितने प्रकारका अन्न और कितने व्यंजन होने चाहिये ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले ॥ हे पुत्र ! तुमने अच्छा प्रश्न किया. यह प्रश्न मेरी प्रीति करनेवाला है मैं तुझसे संपूर्ण अन्नपानादिका वर्णन करता हूं ॥ २ ॥ प्रथम तो सुवर्णका पात्र श्रेष्ठ है. उसके अभावमें चांदीका, उसके न होनेपर ढाकका अत्यंत सुंदर विस्तीर्ण (लंबा चौड़ा) पात्र श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥ सैंकडों कँचौरी पात्रमें रखकर उनके बीचमें नानाप्रकारके फल युक्त व्यंजन दे ॥ ४ ॥ चंद्रमाकी समान

॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ साधु पृष्टं त्वया वत्स मम प्रीतिकरं परम् ॥ वक्ष्यामि तेऽन्नपानादि व्यंजनादीन्यशेषतः ॥२ ॥ आदौ हिरण्मयं पात्रं तदभावे च राजतम् ॥ तदभावे च पालाशं विस्तीर्णं बहुसुंदरम् ॥ ३ ॥ कचोलाः शतशः कार्याः पात्रे वै परितोनघ ॥ तन्मध्ये व्यंजना देया नानाफलमयाः शुभाः ॥ ४ ॥ पायसं चंद्रसंकाशं पात्रे वै शर्करायुतम् ॥ भक्तं कुसुमसंकाशं मुद्गान् काचप्रभाञ्छुभान् ॥ ५ ॥ नानाव्यंजनसंरुद्धं त्रिभिः पक्तिभिरेव च ॥ निंबूरसेन चंद्रेण फलमूलयुतेन च ॥ ॥ ६ ॥ वैकृताश्च तदा कार्याः शतशो भोजने मम ॥ द्राक्षास्तु मिश्रिताश्चूतकरमर्दकृताः शुभाः ॥ ७ ॥ मरीचपिप्पलीसार्द्रकैलाचंद्रकसंयुताः ॥ क्वाथिताः कथिकाः कार्याः शतशो भोजने मम ॥ ८ ॥

प्रकाशमान शर्करायुक्त पायस (दूधकी खीर.) और कुमुदके समान भात और काचकी कांति समान श्रेष्ठ मुद्गोंका सूप देवे. ॥ ५ ॥ नानाप्रकारके व्यंजनोंसे तीन पंक्ति करके उस पात्रको पूर्ण करै चंद्ररूप नींबूके रससे और फल मूल इत्यादिसे मेरे भोजनमें सैंकड़ों विकार (चटनी आदि) बनावे, दाख, आम, मिरच, पीपल, अदरक, इलायची इत्यादिको मलकर पकाकर बनावे मेरे भोजनमें सोंठ, चटनी कढी आदि सैंकडों पदार्थ बनावे और सैंकडों

कचौलोंसे पात्रको पूर्ण कर नानाप्रकारके सुगंधित पुष्पोंसे युक्त करै जो मेरे प्रिय है ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ रमणीय और गोळ सर्वत्र बिन्दु युक्त मांडे मिसरी करके युक्त दूध करके सहित ॥ १० ॥ और मीठे गौके घृतसे युक्त देवे. तिस भोजनमें सुंदर कचोले और सुवर्णकी कांति समान सुगंधित घृत देवै मेरे भोजनके पात्रमें चन्द्रमाकी समान गेहूँकी उज्ज्वल पूरी, इमरती, जलेबी, पुए और पेडा, कलाकन्द आदि दूधके विकार करै ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ मणि,

प्रलेहनास्तथा कार्याः कचोलशतसंकुलाः ॥ नानाकुसुमसंमोदयुक्ताः सहसि मे प्रियाः ॥ ९ ॥ मंडका वर्तुला रम्याः समाः सर्वत्र बिंदुवत् ॥ सितया सहितेनाथ दुग्धेन क्वथितेन च ॥ १० ॥ मधुवर्णेन गव्येन युक्ते तस्मिन्सुभोजने ॥ कचोले सुप्रभे वत्स स्थितं कांचनसुप्रभम् ॥ ११ ॥ घृतं सुवासितं प्रीत्या देयं हि मम भोजने ॥ तत्र गोधूमपात्रेण चंद्रकेण हि चोज्ज्वलम् ॥ १२ ॥ सौवाल्हिकाः पूरिकास्तु शतच्छिद्राः सवेष्टिकाः ॥ अपूपाश्च तथा क्षीरप्रकारांस्तु प्रकारयेत् ॥ १३ ॥ मणयः सूत्रसंज्ञाश्च मालतीकुसुमादयः ॥ पर्पटा वर्पटा रम्या माषकूष्मांडसंभवाः ॥ १४ ॥ वटकान्नवधारम्यान् कुर्यान्मासे सहे मम ॥ द्विधा जातीमरीचैश्च पूरिता द्रोणके शुभाः ॥ १५ ॥ युक्तेन लवणेनातिशुद्धतैलेन पूरिताः ॥ कुंकमाभाः स्नेहहीनाः सक्षताइव दुर्जनाः ॥ १६ ॥ दधिदुग्धयुताः केचिच्चिंचणी चूतसंभवाः ॥ द्राक्षारसयुताः केचित्तथान्येक्षुरसैर्युताः ॥ १७ ॥

सूत, मालतीफूल आदि, पापड़ और उड़दकी वडी, काशीफळ, ॥ १४ ॥ मेरे मार्गशीर्ष मासमें नौप्रकारके रमणीय वडे करै, जातीफलके, मरिचोंके, लवणके, अतिशुद्ध तैलके, कुंकुमकी समान कान्तिवाले, देखनेमें दुर्जनकी समान रूखे ॥ १५ ॥ १६ ॥ कुछ दही दूधके, कुछ सौंठके,

कुछ आमके, कुछ किसमिसोंके रसके, कुछ ऊखके रसके, कुछ जीरेके पानीके, कुछ मिसरीके करे हुए, और चार प्रकारके रसों करकै युक्त, वडे बनावै
॥ १७ ॥ १८ ॥ सौ लवंगोंकरकै युक्त नारियल (गोले) के टुकड़े, और वज्रप्रभा, अनुकणिका, चारवीज (चारोळी,) उत्तम खारीक, ॥ १९ ॥
घृत दुग्ध-मिसरी-इन सबोंको कड़ाईमें भूनकर बनाए हुए पदार्थ, खिचड़ी, चिकनी फेनी, ॥ २० ॥ पिराकी, चन्द्रपोतिका, और नुकनीके लड्डू,

राजिकाजलमध्यस्थास्तथान्ये सितया सह ॥ रसैश्चतुर्विधैश्चान्यैर्वटका नवधा मताः ॥ १८ ॥ वज्रप्रभानुकणिकाचारबीजसुखा-
रिकैः ॥ शकलैर्नारिकेलस्य लवंगशतसंयुताः ॥१९॥ घृतक्षीरसिताद्यास्ताः कटाहे सुप्रलोडिताः ॥ लब्धा सितादिकृसररम्याः
स्निग्धाश्च फेनिकाः ॥ २० ॥ पराकीकासु वै पक्वाः कृताश्चंद्रेण पोलिकाः ॥ मोदकास्तत्र वै कार्याश्चारबीजभवाः परे ॥ २१ ॥
सितया सहिताः कार्या अन्ये दुग्धेन निर्मिताः ॥ नारिकेलफलैश्चान्ये वृक्षनिर्याससनिर्मिताः ॥ २२ ॥ वदामैश्च शुभाश्चान्ये
तिलैश्च कणवीजकैः ॥ ईदृशान्मोदकांश्चान्यांस्तुष्ट्यर्थं मम कारयेत् ॥ २३ ॥ अर्शोघ्नं मोचनीकंदं तथार्द्रं करमर्दकम् ॥ नारिंगं
चिंचणीकं च कंकोलफलमेव च ॥२४॥ दशारं त्रिपुरीजातं शुभं निंबफलं विसम् ॥ तिंदूफलं लवंगं च श्रीफलं तिलकं लुती॥२५॥

और दुग्धमें मिसरी मिलाकर बनाए हुए अनेक प्रकारके पदार्थ, नारियलसे किये हुये पदार्थ, गोंदके बनाए हुए मिष्टान्न, ॥ २१ ॥ २२ ॥ ॥ २५ ॥
सुन्दर वदामोंके, तिलोंके, और छुआरोंके बनाए हुए पदाथ, इन सब पूर्वोक्त पदार्थोंके तथा अन्य पदार्थोंके लड्डू बनवावै ॥ २३ ॥ सूरण मोचनी-
कन्द, आर्द्र करमर्दक (करवंद), नारंगी, इमली, कंकोल, इलायची, सुन्दर निम्बका फल, भसींडे, तिन्दूफल, लवंग, श्रीफल, काला लवण, और लुती

॥ २४ ॥ २५ ॥ वल्कल, वंशकारीर, कायफल, किसमिस, सुन्दर आम, कटहल, आमलै, शुक्तिभव फल, अंबाड़वफल, केलेका फल, मिरचैं, ॥ २६ ॥ ॥ २७ ॥ इन सबको शुद्ध सरसौंका तेल और लवण तथा जीरा डालकर तीन वर्षपर्यन्त घटमें रखकर बना हुआ आचार बनावै ॥ २८ ॥ हे सत्कार करनेमें प्रवीण ! मार्गशीर्ष मासमें मेरी प्रीतिके करनेवाले इसप्रकार अनेक प्रकार व्यंजन बनावै ॥ २९ ॥ ऐसा भोजन बनानेका यदि सामर्थ्य नहीं होय तो किसप्रकार

वल्कलं वंशकारीरं तथा कायफलं बलम् ॥ द्राक्षाफलं चूतफलं रम्यं कंटकिनीफलम् ॥ २६ ॥ धात्रीफलं शुक्तिभवं फलमंबाडवं तथा ॥ रंभाफलं पिप्पली च मरीचाश्च मनोहराः ॥ २७ ॥ शुद्धसर्षपतैलेन लवणेन सुवेधितम् ॥ तथा राजिकया विद्धं त्रिभिर्वर्षैर्घटे स्थितम् ॥ २८ ॥ एवं विधानि जातानि व्यंजनानि च मानद ॥ कर्तव्यानि सहोमासे मम प्रीतिकराणि वै ॥ २९ ॥ एतादृशे भोजने चेदसामर्थ्यं भवेद्यदि ॥ एवं कार्यं तदा तेन संक्षेपेण शृणुष्व मे ॥ ३० ॥ लड्डूकमेकं घृतपूरमेकं फेनद्वयं कोकरसत्रयं च ॥ घृतप्लुतं मंडकषोडशानां वटाष्टदायी नरकं न पश्येत् ॥ ३१ ॥ अर्द्धाढकं सुचिरपर्युषितं च दुग्धं खंडस्य षोडशपलानि शशिप्रभस्य ॥ सर्पिष्पलं मधुपलं मरिचं द्विकर्षं शुंठ्याः पलार्धमथवार्धपलं चतुर्णाम् ॥ ३२ ॥ श्लक्ष्णे पटे ललनया मृदुपाणिघृष्टा कर्पूरधूलिधवलीकृतभांडसंस्था ॥ एषा शुभा रसवती प्रकरोति यो वै कामान् ददामि सकलान् मनुजस्य तस्य ॥ ३३ ॥

व्यंजन बनाने चाहिये, सो संक्षेपसे कहताहूँ सुनो ॥ ३० ॥ एक घेवर, दो फेनी, तीन खजूर, घीके भीजे हुए सोलह माँडे और आठ बड़े मार्गशीर्ष मासमेंपुण्य करके देनेवाला नरकको नहीं देखता है ॥ ३१ ॥ आधा आढ़क (दोसेर धान्य जिस पात्रमें रहता है वह पात्रभर) सुन्दर दुग्ध, सोलह पल (चौंसठ तोले) खांड चन्द्रमाकी समान स्वेत, एक पल घृत, एक पल सहत, दो कर्ष मिरचैं, आधे पल सोंठ अथवा चारों वस्तु आधा आधा पल, इन सब वस्तुओंको महीन वस्त्रमें छानकर

कपूरकी धूलि वसाए हुए पात्रमें करके जो स्त्री या पुरुष देता है मैं उसके संपूर्ण मनोरथोंको पूर्ण कर देता हूं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ इतिश्रीस्कंदपुराणे मार्गशीर्षमाहात्म्ये विष्णुब्रह्मसम्वादे भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ब्रह्मा बोले ॥ हे तात ! हे प्रभो ! नैवेद्यके अनंतर मनुष्योंको क्या करना चाहिये ? मार्गशिरमें जो कर्तव्य है सो सब तत्वपूर्वक मुझसे कहिये ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले ॥ भोग लगाकर कपूरसे सुगंधित जलसे आचमन देकर तांबूल चंदन

इतिश्रीस्कंदपुराणे मार्गशीर्षमाहात्म्ये विष्णुब्रह्मसंवादे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ नैवेद्यानंतरं तात किं कर्तव्यं नृभिः प्रभो ॥ यत्कर्तव्यं सहोमासे तत्सर्वं ब्रूहि तत्त्वतः ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अथ भुक्तवते दत्त्वा जलैः कर्पूरवासितैः ॥ आचमनं च तांबूलं चंदनं करमार्जनम् ॥ २ ॥ पुष्पांजलिं ततः कुर्याद्भक्त्यादर्शं प्रदर्शयेत् ॥ नीराजनं ततः कार्यं कार्पूरं विभवे सति ॥ ३ ॥ समर्प्य मुकुटादीनि भूषणानि विचक्षणः ॥ ततः पश्चान्महाभाग प्रकल्प्य छत्रचामरे ॥ ४ ॥ प्रसादसुमुखं ध्यात्वा श्यामसुंदरविग्रहम् ॥ जपेदष्टोत्तरशतं स्तुवीत स्तुतिभिः प्रभुम् ॥ ५ ॥ शंखरौप्यमयी माला कांचनी च विशेषतः ॥ पद्माक्षैश्चैव सुभगैर्विद्रुमैर्मणिमौक्तिकैः ॥६॥ रचितेंद्राक्षकैर्माला तथैवांगुलिपर्वभिः ॥ पुत्र जीवमयी माला शस्ता वै जपकर्मणि॥७॥

अर्पण कर मार्जन करै ॥ २ ॥ फिर भक्तिपूर्वक पुष्पांजलि दे दर्पण दिखाकर आरती करै. ऐश्वर्यवान् होनेपर कार्पूर (कपूर) की आरती करै ॥ ३ ॥ फिर बुद्धिमान् पुरुष, मुकुट भूषण, छत्र, चमर, समर्पण कर प्रसन्नवदन श्याम सुंदर शरीरधारी (विष्णु) का ध्यान कर अष्टोत्तरशत मंत्रजप कर, प्रभुकी स्तुति करै ॥ ४ ॥ ५ ॥ शंख, चांदी, सोने, कमलगट्टे, सुंदर मूंगे, मणि, मोती, इत्यादिकी ॥ ६ ॥ इंद्राक्षकी माला, वा अंगुलियोंके पोरवों-

की माळा बनावै. हे पुत्र ! जप करनेकेलिये जीवमयी (जियापोताकी) माळा श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥ चलता हुआ, हसता हुआ, इधर उधर देखता हुआ, पांवपर पांव रखकर, शिरपर हाथ रखकर, उठ २ कर और दुःखी मनसे जप न करै. जपके समय और व्रत, होम, पूजनके समय संभाषण न करै ॥ ८ ॥ ९ ॥ घरमें एकगुणा, गोशालामें दशगुणा, नदी किनारे सौगुणा, अग्निहोत्रके स्थानमें और तीर्थादिमें सहस्रगुणा और मेरे समीपमें अनंतगुणा जपका फल होता

न च क्रमन्न च हसन्न पार्श्वमवलोकयन् ॥ न पदा पदमाक्रम्य करप्राप्तशिरस्तथा ॥ ८ ॥ नोत्तिष्ठन्मन्मनुं विद्वान् न जपेद्व्यग्रमा
नसः ॥ जपकाले न भाषेत व्रतहोमार्चनादिषु ॥ ९ ॥ गृहेष्वेकगुणं जाप्यं गोष्ठे दशगुणं भवेत् ॥ नदीतीरे शतं विद्यादग्न्य-
गारे दशाधिकम् ॥ १० ॥ तीर्थादिषु सहस्रं स्यादनंतं मम सन्निधौ ॥ एवं कृत्वा सहोमासे यः कुर्याच्च प्रदक्षिणाम् ॥ ११ ॥
सप्तद्वीपवतीपुण्यं लभते सपदे पदे ॥ पठन्नामसहस्रं तु अथवा नाम केवलम् ॥ १२ ॥ एका प्रदक्षिणा भक्त्या दहेत्पापं सदा-
ह्निकम् ॥ प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुंधरा ॥ १३ ॥ दिनसप्तोद्भवं पापं मम तिस्रः प्रदक्षिणाः ॥ तत्क्षणान्नाशयंत्येव पापं
देहे दशाह्निकम् ॥ १४ ॥ कृताः प्रदक्षिणा येन एकविंशतिभक्तितः ॥ भ्रूणहत्यादिपापानि नाशमायांति तत्क्षणात् ॥ १५ ॥

है इसप्रकार मार्गशिरमें जपकरके प्रदक्षिणा करै ॥ १० ॥ ११ ॥ जप करनेवाला प्रत्येक पदमें चरणमें सातद्वीपवाली पृथ्वीकी प्रदक्षिणाका फल पाता है सहस्र नाम अथवा एकही नामको पाठ करता हुआ प्रदक्षिणा करै ॥ १२ ॥ भक्तिपूर्वक एक प्रदक्षिणा एक दिनका पाप नष्ट करती है और सप्त द्वीपवती पृथ्वीकी प्रदक्षिणाका फल देती है ॥ १३ ॥ मेरी तीन प्रदक्षिणा सात दिनका अथवा दश दिनका पाप उसी क्षण नष्ट करती हैं ॥ १४ ॥ जो भक्तिपूर्वक इकीस प्रदक्षिणा

करता है उसके गर्भहत्यादिक पाप उसीक्षण नष्ट होजाते हैं ॥ १५ ॥ जिसने भक्तिपूर्वक एकसौ आठ प्रदक्षिणा दी उसने पूर्ण श्रेष्ठ दक्षिणावाले संपूर्ण यज्ञ किये ॥ १६ ॥ और उसने उतनीहीवार पृथ्वीकी प्रदक्षिणा की. माताकी, पृथ्वीकी और शालिग्रामकी प्रदक्षिणा परस्पर तुल्य हैं. और मार्गशिरमें एक दंडवत और सात प्रदक्षिणा वे दोनों तुल्य हैं, किंतु दंडवत विशेष है. जो नित्य प्रदक्षिणा और दंडवत करता है ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ और विशेष करके जो मार्गशिरमें

अष्टोत्तरशतं येन कृता भक्त्या प्रदक्षिणाः ॥ तेनेष्टं क्रतुभिः सर्वैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥१६॥ प्रदक्षिणीकृता तेन तावद्वारं वसुंधरा॥ मातुः प्रदक्षिणास्तद्वद्भूतधात्रीप्रदक्षिणाः ॥ १७ ॥ शालिग्रामशिलायाश्च सममेतत्त्रयं स्मृतम् ॥ एकोदंडप्रपातश्च सहे सप्त प्रदक्षिणाः ॥१८॥ सममेतद्द्वयं नो वा दंडपातो विशिष्यते ॥ प्रदक्षिणे दंडपातं यः करोति सदा मम ॥ १९ ॥ सहोमासे विशेषेण आकल्पं स वसेद्दिवि ॥ कल्पादनंतरं तात चक्रवर्ती प्रजायते ॥ २० ॥ चिरायुर्धनवान् भोगी दानवान् धर्मवत्सलः ॥ सहस्रनामपठनात्पापं नश्येत्त्रिधा कृतम् ॥ २१ ॥ अथ किं बहुनोक्तेन शृणु गुह्यं च मे सुत ॥ दामोदरेति नाम्ना वै भवेत्प्रीतिर्ममातुला ॥२२॥ गुणसंबंधि मन्नाम कृतं मात्रा यशोदया ॥ यदा मे दधिभांडस्य स्फोटनं गोकुले कृतम् ॥ २३ ॥

दंडवत और प्रदक्षिणा करता है वह कल्पपर्यंत स्वर्गमें वसता है. अनंतर कल्पके चक्रवर्ती होता है ॥ २० ॥ वह दीर्घायु, धनवान, भोगी, दानी और धर्मात्मा होता है. सहस्र नामके पढनेसें (मन वचन कर्मसे किये हुए) तीनों पाप नष्ट होते हैं ॥ २१ ॥ हे पुत्र ! बहुत कहनेसे क्या होगा, मैं गुप्तवार्ता कहता हूं सुनो. दामोदर नामसे मुझे बड़ी प्रीति होती है ॥ २२ ॥ मेरा यह गुण (रस्सी तथा गुण) संबंधी नाम मेरी माता यशोदाने रक्खा है.

जब मैंने गोकुलमें दहीके पात्र फोड़े तब यशोदाने मुझे रस्सीसे कसकर ओखलीमें बांधा, तबसे मेरा नाम दामोदर कहलाया ॥ २३ ॥ २४ ॥ ॐनमो दामोदराय" इस मंत्रको जो सावधान चित्त होकर जपता है और नित्य पवित्र होकर सूर्योदयके समय प्रतिदिन तीन सहस्र जप करै ॥ २५ ॥ और साढ़े तीन लक्ष जप पूर्ण करके उद्यापन करता है और उसके दशांशसे भक्तिपूर्वक तर्पण जो होम और ब्राह्मणभोजन करता है ॥ २६ ॥ मैं उसके मनोरथ

तदा यशोदया गाढं बद्धो दाम्ना ह्युलूखले ॥ ततः प्रभृति मे नाम ख्यातं दामोदरेति च ॥ २४ ॥ नमो दामोदरायेति जपेद्यः सुसमाहितः ॥ सूर्योदये शुचिर्भूत्वा त्रिसहस्रं दिने दिने ॥ २५ ॥ सार्द्धलक्षत्रयं यावत्तत उद्यापयेद्बुधः ॥ तर्पणं हवनं चैव ब्रह्मभोज्यं दशांशतः ॥ २६ ॥ एवं यः कुरुते भक्त्या तस्य यच्छामि वांच्छितम् ॥ धनं धान्यं तथा दारान् पुत्रांश्चान्यच्च वांच्छितम् ॥ २७ ॥ त्रिसत्येन मया चोक्तं श्रद्धस्व त्वं महामते ॥ मंत्रराजमिमं पुत्र कृपया मे प्रकाशितम् ॥ २८ ॥ दामोदरायेति पठन्नित्यं कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥ दंडपातं तथा पुत्र अष्टांगेन समन्वितम् ॥ २९ ॥ पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यामुरसा शिरसा तथा ॥ मनसा वचसा दृष्ट्या प्रणामोष्टांग उच्यते ॥ ३० ॥

पूर्ण करता और हूं धन धान्य स्त्री पुत्रादि देता हूं ॥ २७ ॥ मैंने मन बचन कर्म तीनों करके सत्य कहा है. हे महाबुद्धिवान्! तू श्रद्धा कर. हे पुत्र! मैं यह परमोत्तम मंत्र तुझपर कृपा करके प्रकाशित किया है ॥ २८ ॥ "ॐनमो दामोदराय" इसमंत्रको नित्य पढता हुआ प्रदक्षिणा करे और साष्टांग दंडवत प्रणाम करै ॥ २९ ॥ दोनों पैर, दोनों हाथ, दोनों जंघा, हृदय और शिर, मन, वचन दृष्टिसे की हुई साष्टांग प्रणाम कहलाती है ॥ ३० ॥

परस्पर भुजाओंसे मेरे चरणोंमें शिर नवा कर, "हे स्वामिन्! मुझ आपत्तियुक्त भयप्राप्त शरणागतको मृत्युरूप सागरसें बचाओ" यह कहकर हे पुत्र! तदनन्तर मेरी दी हुई आशीर्वादको आदरपूर्वक शिरपर धारण करके मेरी पूजाकी प्रीतीके निमित्त यह कहै ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ हे जनार्दन! मंत्रहीन, क्रियाहीन, भक्तिहीन, जो मैंने पूजन किया वह सब मेरा पूर्ण हो ॥ ३३ ॥ मार्गशिरमें प्रणवको कहता हुआ और मृदंग बजाता हुआ मनुष्योंको

शिरो मत्पादयोः कृत्वा बाहुभ्यां च परस्परम् ॥ प्रपन्नं पाहि मामीश भीतं मृत्युग्रहार्णवात् ॥ ३१ ॥ पश्चाच्छेषां मया दत्तां शिर-
स्याधाय सादरम् ॥ एवं ब्रूयात्ततो वत्स मम पूजाप्रपूर्त्तये ॥ ३२ ॥ मंत्रहीनं क्रियाही[illegible]क्तिहीनं जनार्दन ॥ यत्पूजितं मया
देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥ ३३ ॥ मृदंगवाद्येन समं प्रणवेन सुसंयुतम् ॥ एवं कार्यं सहोमास नृत्यं पुण्यप्रदं नृणाम् ॥ ३४ ॥ गीतं
वाद्यं च नृत्यं च तथा पुस्तकवाचनम् ॥ पूजाकाले चतुर्वक्र सर्वदा मम च प्रियम् ॥ ३५ ॥ गीतवाद्याद्यभावे च मम नामसह-
स्रकम् ॥ स्तवराजं तथा पुत्र गजेंद्रस्य च मोक्षणम् ॥ ३६ ॥ अनुस्मृतिश्च गीता च स्तवनं पंचधा मतम् ॥ पंचस्तवं महाभाग
मम प्रीतिकरं परम् ॥ ३७ ॥ पादोदकं पिबेद्यो वै शालग्रामसमुद्भवम् ॥ पंचगव्यसहस्रैस्तु प्राशितैः किं प्रयोजनम् ॥ ३८ ॥

पुण्यदायी नृत्यको करे ॥ ३४ ॥ हे चतुर्मुख! गाना, बजाना, नाचना, पुस्तकका वाचना, ये पूजाके समय सदा मुझे प्रिय हैं ॥ ३५ ॥ गीतवाद्यके अभावमें विष्णुसहस्र नाम, भीष्मस्तवराज, गजेंद्रमोक्ष, अनुस्मृति, भगवद्गीता, ये पांच स्तोत्र मेरी परम प्रीति करनेवाले हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ जो शालग्रामजीका चरणामृत पीता है उस सहस्रों पंचगव्य छिड़कनेका कुछभी प्रयोजन नहीं ॥ ३८ ॥

जो एक बूंद भी शालग्रामजीका चरणामृत पीता है वह फिर माताके स्तनको नहीं पीता अर्थात् मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥ उनको सूतक और मृतकमें भी आशौच नहीं होता जो मेरे चरणोदकको शिरपर छिड़कते हैं और प्राशन करते हैं ॥ ४० ॥ अंतसमय जिसे मेरा चरणामृत दिया जाता है चाहे वह सदाचाररहित भी हो वह भी मुक्ति पाता है ॥ ४१ ॥ जो मनुष्य अपेय (न पीनेयोग्य) को पीता है और अभोज्य (न खानेयोग्य) को खाता है और

शालग्रामशिलातोयं यः पिबेद्बिंदुना समम् ॥ मातुः स्तन्यं पुनर्नैव स पिबेन्मुक्तिभाङ्नरः ॥ ३९ ॥ आशौचं नैव विद्येत सूतके मृतकेपि च ॥ येषां पादोदकं मूर्ध्नि प्राशनं ये प्रकुर्वते ॥ ४० ॥ अंतकालेपि यस्येदं दीयते पादयोर्जलम् ॥ सोपि सद्गतिमाप्नोति सदाचारबहिष्कृतः ॥ ४१ ॥ अपेयं पिबते यस्तु भुंक्ते यद्यप्यभोजनम् ॥ अगम्यागमनो यो वै पापाचारश्च यो नरः ॥ ४२ ॥ सोपि पूतो भवत्याशु सद्यः पादांबुधारणात् ॥ चांद्रायणात्पादकृच्छ्रादधिकं पादयोर्जलम् ॥ ४३ ॥ अगुरुं कुंकुमं वापि कर्पूरं चानुलेपनम् ॥ मम पादांबुसंस्पृष्टं तद्वै पावनपावनम् ॥ ४४ ॥ दृष्टिपूतं तु यत्तोयं भवेद्वै विप्रसत्तम ॥ तद्वै पापहरं नृणां किं पुनः पादयोर्जलम् ॥ ४५ ॥ प्रियस्त्वं मेऽग्रजः पुत्रो विशेषेण च मत्प्रियः ॥ तदर्थं कथितं सर्वं रहस्यं यच्च मे स्थितम् ॥ ४६ ॥

अगम्या (न गमन करने योग्य स्त्री) में गमन करता है और पाप करता है वहभी चरणामृतके धारण करनेसे शीघ्र पवित्र हो जाता है. चरणामृत, चांद्रायण और पादकृच्छ्रसे भी अधिक है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ मेरे चरणामृतसे स्पर्श किया हुआ अगरु, कुंकुम, कपूर, चंदनादि सब परम पवित्र हैं ॥ ४४ ॥ हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ ! मेरी दृष्टिसे पवित्र हुआ जलही मनुष्योंके पाप हरता है तो क्या चरणामृत पाप न हरेगा ॥ ४५ ॥ तू मेरा प्रिय और

बड़ा पुत्र है. इसकारण यह सब रहस्य तुझसे कहा ॥ ४६ ॥ इतिश्रीस्कंदपुराणे मार्गशिरमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे भाषायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ब्रह्मा बोले ॥ हे स्वामिन् ! हे भूतभावन ! एकादशीका माहात्म्य और मूर्तिका विधान यह सब मुझसे कृपा करके कहिये ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! सुन, मैं पापनाशिनी कथा कहता हूं. जिसे सुनकर ब्रह्महत्यादि दोष नष्ट होते हैं. ॥ २ ॥ पहिले कांपिल्य नगरमें वीरबाहु नाम एक राजा था,

इतिश्रीस्कन्दपुराणे मार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ एकादश्याश्च माहात्म्यं मूर्तीनां च विधानकम् ॥ सर्वं ब्रूहि मम स्वामिन्कृपया भूतभावन ॥ १ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ शृणुष्व द्विजशार्दूल कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ यां श्रुत्वा याति विलयं पापं ब्रह्मवधादिकम् ॥ २ ॥ कांपिल्ये नगरे राजा वीरबाहुरिति स्मृतः ॥ सत्यवादी जितक्रोधी ब्रह्मज्ञो मम तत्परः ॥ ३ ॥ भाववान्स दयाशीलो रूपवान्बलवान्नरः ॥ भक्तो भगवतां नृणां सदा मम कथारुचिः ॥ ४ ॥ सदा मम कथासक्तः सदा जागरणप्रियः ॥ दाता विद्वान् क्षमाशीलो विक्रमी विजितेंद्रियः ॥ ५ ॥ विजयी रणशीलश्च ऋद्ध्या च धनदोपमः ॥ पुत्रवान्पशुमांश्चैव स्वदारनिरतस्तथा ॥ ६ ॥ तस्य भार्या कातिमती रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ पतिव्रता महासाध्वी मम भक्तिरता सदा ॥ ७ ॥

वह सत्यवादी, क्रोधरहित, ब्रह्मज्ञ, मेरे पूजनादिकमें तत्पर, ॥ ३ ॥ भाववान्, दयावान्, रूपवान्, बलवान् भगवद्भक्तोंका सेवक, मेरी कथामें प्रीति करनेवाला, ॥ ४ ॥ नित्य मेरी कथामें आसक्त, सदा जागरणप्रिय, दाता, विद्वान्, क्षमावान्, पराक्रमी, जितेंद्रिय ॥ ५ ॥ विजयवान्, रणशील ऋद्धिसे कुबेरकी समान, पुत्रवान्, पशुवान् और आपकी स्त्रीमें रत था ॥ ६ ॥ उसकी स्त्री कांतिमती नाम पतिव्रता महासाध्वी सदा मेरी भक्तिमें तत्पर थी. पृथ्वीपर

उसके समान रूपवती कोई न थी. ॥ ७ ॥ उसस्त्रीके साथ वह विशालाक्ष (बड़ी आंखोंवाला) तरुण राजा पृथ्वीका पालन करता था. वह राजा एक मेरे शिवाय दूसरे देवता न जानता था. ॥ ८ ॥ हे पुत्र ! एक दिन उस महात्मा वीरबाहुके घर महामुनि भरद्वाजजी आये. ॥ ९ ॥ तब राजाने दूरसे उन्हें आते देख विधिपूर्वक अर्घ्य देकर स्वागत किया ॥ १० ॥ और राजाने स्वयं उन्हें परमभक्तिपूर्वक प्रणाम कर, आसन दिया और मुनिके सन्मुख

तया सह विशालाक्षो बुभुजे मेदिनीं युवा ॥ मुक्त्वैकं मां महाबाहो नान्यज्जानाति दैवतम् ॥ ८ ॥ एकस्मिन्दिवसे पुत्र भारद्वाजो महामुनिः ॥ समागतो गृहे तस्य वीरबाहोर्महात्मनः ॥ ९ ॥ दृष्ट्वा समागतं दूराद्भारद्वाजं महामुनिम् ॥ स्वागतं कारयामास दत्त्वार्घ्यं विधिवत्तदा ॥ १० ॥ आसनं कल्पयामास स्वयमेव महीपतिः ॥ प्रणम्य परया भक्त्या तस्थौ मुनिवराग्रतः ॥ ११ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं दिनम् ॥ अद्य मे सफलं राज्यमद्य मे सफलं गृहम् ॥ १२ ॥ प्रसन्नो मम विप्रर्षे परमात्मा जनार्दनः ॥ यत्त्वं समागतो ह्यद्य गृहे योगिवरस्तथा ॥ १३ ॥ मुक्तोहं पापकोट्याद्य यत्त्वयाहं निरीक्षितः ॥ राज्यं लक्ष्मीर्गजाश्वाश्च मया तुभ्यं निवेदिताः ॥ १४ ॥ वैष्णवोसि मुनिश्रेष्ठ नास्त्यदेयं मया तव ॥ मेरुतुल्यं भवेत्सर्वं वैष्णवस्य वराटिका ॥ १५ ॥

बैठ गये. ॥ ११ ॥ राजा बोले ॥ आज मेरा जन्म सफल है, आज मेरा दिन सफल है, आज मेरा राज सफल है, आज मेरा घर सफल है. ॥ १२ ॥ हे विप्रर्षि ! मुझपर जनार्दन परमेश्वर प्रसन्न हुए. जो. योगियोंमें श्रेष्ठ आप आज मेरे घर आये. ॥ १३ ॥ मैं आपके दर्शनसे करोड़ों पापोंसे छूट गया, मैंने सब राज्यलक्ष्मी, हाथी, घोड़े आपको निवेदन किये. ॥ १४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आप वैष्णव हैं, मुझे आपको कुछ अदेय नहीं. वैष्णवको एक

कौड़ीमात्र देनेसे मेरु पर्वतकी समान दान होता है. ॥ १५ ॥ जिस दिन जिसके घर ब्राह्मणवर वैष्णव नहीं आते वह दिन उसका निष्फल होता है. यह मुझसे ब्राह्मणोंने कहा है. ॥ १६ ॥ यह मुझसे गार्ग्य, गौतम, सुमंतु और जो विष्णुभक्त द्विजाति जन हैं उन सबोंने कहा है, ॥ १७ ॥ जे विष्णुभक्त नहीं हैं और जो मनुष्य हरिके दिन (एकादशी आदिके दिन) भोजन करते हैं वे महापातकी पिशाच हैं ॥ १८ ॥ सहस्रों शिवव्रत और

नायाति हि गृहे यस्य वैष्णवो वै द्विजोत्तमः ॥ तद्दिनं विफलं तस्य कथितं ब्राह्मणैर्मम ॥ १६ ॥ विष्णुभक्ताश्च ये केचित्सर्वे वर्णा द्विजातयः ॥ कथितं मम गार्ग्येण गौतमेन सुमंतुना ॥ १७ ॥ ये त्वभक्ता हृषीकेशे पिशाचास्ते हि मानवाः ॥ महापातकलिप्तास्ते ये भुंजंति हरेर्दिने ॥ १८ ॥ शिवव्रतसहस्रैस्तु सौरैर्ब्राह्मैश्च कोटिभिः ॥ यत्फलं कविभिः प्रोक्तं वासरैकेन तद्धरेः ॥ १९ ॥ गर्वमुद्वहते तावत्तिथिर्ब्राह्मी च शांकरी ॥ यावन्नायाति विप्रेंद्र द्वादशी च मम प्रिया ॥ २० ॥ तावत्प्रभाव स्ताराणां यावन्नोदयते शशी ॥ तिथिस्तथा च विप्रेंद्र यावन्नायाति द्वादशी ॥ २१ ॥ नारदेन पुरा प्रोक्तं वसिष्ठेन ममाग्रतः॥ त्वं वेत्ता सर्वधर्माणां वैष्णवाना महामुने ॥ २२ ॥

करोड़ों सूर्य और ब्रह्माके व्रतोंका जो फल है वही विष्णुके एक व्रतका फल है ॥ १९ ॥ हे विप्रवर ! ब्रह्मा और शिवकी तिथि तबहीतक गर्व करती हैं, जबतक मेरी तिथि परमप्रिय द्वादशी नहीं आती. ॥ २० ॥ तारोंका प्रकाश तभीतक है, जबतक चंद्रमा उदय नहीं होते, ऐसेही अन्य तिथियोंका प्रभाव तभीतक है जबतक द्वादशी नहीं आती. ॥ २१ ॥ नारद और वशिष्ठजीने यह पहिले मुझसे कहा था और हे महामुने ! आप

सब वैष्णव धर्मोंके जाननेवाले हैं ॥ २२ ॥ भारद्वाज बोले ॥ हे महाभाग ! तुमने अच्छा प्रश्न किया, तुम विष्णुभक्त हो. हे राजा ! उसी प्रजा और पृथ्वीको धन्य है. जिसे तुम पालन करते हो ॥ २३ ॥ उस राज्यमें न वसना चाहिये जहां राजा वैष्णव नहीं हैं. वन और तीर्थमें वसना श्रेष्ठ है, परंतु अवैष्णव राज्यमें रहना योग्य नहीं ॥ २४ ॥ जहां भगवद्भक्त राजा पृथ्वीका पालन करता है उस निष्पाप राष्ट्रको वैकुंठ जानना योग्य है

॥ भारद्वाज उवाच ॥ ॥ साधु पृष्टं महाभाग यत्त्वं भक्तोसि वैष्णवः ॥ सा सुप्रजा मही धन्या यत्त्वं रक्षसि भूमिप ॥ २३ ॥ तस्मिन् राष्ट्रे न वस्तव्यं यत्र राजा न वैष्णवः ॥ वरं वासो वने तीर्थे न तु राष्ट्रे त्ववैष्णवे ॥ २४ ॥ यत्र भागवतो राजा संप्रशास्ति च मेदिनीम् ॥ वैकुंठमिति मंतव्यं तद्राष्ट्रं पापवर्जितम् ॥ २५ ॥ चक्षुर्हीनं यथा देहं पतिहीना यथा स्त्रियः ॥ द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥ २६ ॥ यथा पुत्रो महीपाल मातापित्रोरपोषकः ॥ द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥ २७ ॥ दानहीनो यथा राजा ब्राह्मणो रसविक्रयी ॥ द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥ २८ ॥ दंतहीनो यथा हस्ती पक्षहीनो यथा खगः ॥ द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥२९॥ प्रतिग्रहार्थं वेदादि द्रव्यार्थं सुकृतं यथा ॥ द्वादशी दशमी युक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥ ३० ॥

॥ २५ ॥ जैसे नेत्रहीन शरीर, पतिहीन स्त्रियां, वैसेही दशमीयुक्त द्वादशी और अवैष्णव राज्य हैं. ॥ २६ ॥ माता पिताका पालन न करनेवाला पुत्र ॥ २७ ॥ दानहीन राजा, रस बेचनेवाला ब्राह्मण, ॥ २८ ॥ दांतहीन हाथी, पक्षहीन पक्षी ॥ २९ ॥ दान लेनेके अर्थ वेदादिकका पढना. धनकी

इच्छासे पुण्य करना, ॥ ३० ॥ कुशहीन संध्या, दक्षिणाहीन श्राद्ध, ॥ ३१ ॥ चोटी रखनेवाला शूद्र, कपिला गौके दुग्धका पान, ॥ ३२ ॥ ब्राह्मणीसे संग करनेवाला शूद्र, सुवर्णका चुरानेवाला, धर्मका दूषक, ॥ ३३ ॥ विष्णु और सूर्यादिकोंके प्रिय वृक्षोंका काटना, ॥ ३४ ॥ मंत्रहीन आहुति, जिसका बछडा मर गया है उसका दूध, ॥ ३५ ॥ बालोंवाली विधवा और स्नानरहित व्रत जैसे निष्फल है वैसेही दशमीयुक्ता द्वादशी और अवैष्णव राज्य है ॥ ३६ ॥ श्रेष्ठ

दर्भहीना यथा संध्या यथा श्राद्धमदक्षिणम् ॥ द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥ ३१ ॥ सशिखं च यथा शूद्रं
कपिलाक्षीरपायिनम् ॥ द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥ ३२ ॥ ब्राह्मणीगामिनं शूद्रं हेमघ्नं धर्मदूषकम् ॥ द्वादशी
दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥ ३३ ॥ हरिसूर्यादिवृक्षाणां यथा छेदं नरोत्तम ॥ द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम्
॥ ३४ ॥ यथाहुतिर्मंत्रहीना मृतवत्सापयो यथा ॥ द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥ ३५ ॥ सकेशा विधवा यद्वद्व्रतं
स्नानविवर्जितम् ॥ द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥ ३६ ॥ स राजा प्रोच्यते सद्भिर्यो भक्तो मधुसूदने ॥ तद्राष्ट्रं
वर्धते नित्यं सुखी भवति सप्रजः ॥ ३७ ॥ दृष्टिर्मे सफला राजन् यत्त्वयाहं निरीक्षितः ॥ अद्य मे सफला वाणी जल्पते या
त्वया सह ॥ ३८ ॥ दूरमेव हि गंतव्यं श्रूयते यत्र वैष्णवः ॥ दर्शनात्तु भवेत्पुण्यं तीर्थस्नानसमुद्भवम् ॥ ३९ ॥

साधुओंने उसीको राजा कहा है जो विष्णुका भक्त है. उसीका राज्य नित्य बढता है. वह प्रजा सहित सुखी होता है ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! आज तेरे देखनेसे मेरी दृष्टि सफल हुई. और तुझसे संभाषण करनेसे मेरी वाणी सफल हुई ॥ ३८ ॥ यदि वैष्णव कहीं आये हों, उन्हे आया हुआ सुनकर जो वे दूर भी

हों तो भी उनके पास जाना चाहिये. उनके दर्शनसे तीर्थस्नानका फल होता है ॥३९॥ सो हे राजन् ! मैंने तुझ पवित्र विष्णु भक्तको देखा हे राजा ! तुझे कल्याण हो, तू सुखी रह, अब मैं जाता हूं ॥ ४० ॥ इस पीछे राजा और कांतिमतीने मुनिश्रेष्ठ, सब योगियोंमें प्रवर, भारद्वाजजीको नमस्कार किया ॥ ४१ ॥ तो उन्होंने आशीष दी. हे वरारोहे ! तुझको सौभाग्य प्राप्त होवे और तू अपने पतिकी सेवा करनेवाली हो. और हे शोभने ! विष्णुमें तेरी निश्चल भक्ति हो ॥ ४२ ॥

स त्वं राजन्मया दृष्टो विष्णुभक्तिरतः शुचिः ॥ स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि सुखी भव नराधिप ॥ ४० ॥ एतस्मिन्नंतरे राज्ञा कांतिमत्या नमस्कृतः ॥ भारद्वाजो मुनिश्रेष्ठः प्रवरः सर्वयोगिनाम् ॥ ४१ ॥ अवैधव्यं वरारोहे भक्ता भव स्वभर्त्तरि ॥ निश्चला केशवे भक्तिः सदा भवतु ते शुभे ॥ ४२ ॥ एतस्मिन्नंतरे राजा भारद्वाजं महामुनिम् ॥ उवाच प्रीणयन् वाचा मेघनादगभीरया ॥ ४३ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ विपुला मे कथं लक्ष्मीः किं कृतं पूर्वजन्मनि ॥ सर्वं ब्रूहि मुनिश्रेष्ठ कृपा यदि ममोपरि ॥ ४४ ॥ एतन्मया कथं प्राप्तं राज्यं निहतकंटकम् ॥ पुत्रो वै गुणवान् श्रेष्ठः प्रिया च सुमनोहरा ॥ ४५ ॥ मच्चित्ता मद्गतप्राणा चिंतयंती जनार्दनम् ॥ कोहं मुने कथं चैषा कश्च धर्मो मया कृतः ॥ ४६ ॥

इतनेमें राजा भारद्वाज मुनिको मेघशब्द सरीखे गंभीर वाणीसे संतोषित करता हुआ कहने लगा ॥ ४३ ॥ राजा बोले ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! मैंने प्रथम जन्मोंमें क्या पुण्य किया है. जिससे मेरी लक्ष्मी बहुत बढी हुई है. यह मुझपर कृपाकर कहिये ॥ ४४ ॥ यह निष्कंटक राज्य मैंने कैसे पाया और गुणवान् श्रेष्ठ पुत्र तथा मनके हरनेवाली, मेरेमें चित्त है जिसका, मेरेमें है प्राण जिसका, और विष्णुका ध्यान करनेवाली

यह प्रिय स्त्री मैंने कैसे पाइ. हे मुनि! मैं कौन हूं और यह कौन है और मैंने क्या धर्म किया है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ और हे मुने! इस शोभनांगी मेरी स्त्रीने क्या पुण्य किया है. मृत्युलोकमें दुर्लभ ऐसी मेरी लक्ष्मी किस पुण्यसे हमको मिली है ॥ ४७ ॥ सब राजा मेरे वशमें रहते हैं. मेरा पराक्रम और शरीरकी आरोग्यता कभी नष्ट नहीं होती ॥ ४८ ॥ हे मुने मेरे अत्यंत तेजको कोई नहीं सह सक्ता और जैसी यह (मेरी स्त्री) अनिंदिता

किं चानयापि चार्वंग्या मम पत्न्या कृतं मुने ॥ केन पुण्येन मे लक्ष्मीर्मृत्युलोके सुदुर्लभा ॥ ४७ ॥ अशेषा भूमिपाला वै वर्तंते यस्य मे वशे ॥ विक्रमं चाप्रतिहतं शरीरारोग्यता तथा ॥ ४८ ॥ ममापि विपुलं तेजो न कश्चित्सहते मुने ॥ इच्छा मेऽद्य प्रतिज्ञातुं यथा चेयमनिंदिता ॥ ४९ ॥ मयापि सुकृतं विप्र किं कृतं पूर्वजन्मनि ॥ इति पृष्टो नरेंद्रेण पूर्वजन्मविचेष्टितम् ॥ ५० ॥ स्वपत्न्याश्चेष्टितं चैव संपदां चैव कारणम् ॥ योगोत्थं सुचिरं कालं तथाविंदत मानसे ॥ ५१ ॥ विज्ञातमेतन्नृपते पूर्वजन्मविचेष्टितम् ॥ तव पत्न्याश्च राजर्षे शृणुष्व कथयाम्यहम् ॥ ५२ ॥ ॥ भारद्वाज उवाच ॥ ॥ शृणु भूपाल सकलं यस्येदं कर्मणः फलम् ॥ त्वमासीः शूद्रजातीयो जीवहिंसापरायणः ॥ ५३ ॥

(निंदा रहित) है उसे मैं प्रतिज्ञा करके कह सक्ता हूं ॥ ४९ ॥ हे विप्र! मैंने पूर्व जन्ममें क्या पुण्य किया है? इसप्रकार राजानें पहीले जन्मकी चेष्टा और अपनी स्त्रीकी चेष्टा तथा संपत्तिका कारण पूछा. मुनिने योगसे चिरकालका वृत्तांत अपने मनमें जान लिया. मुनि बोले, हे राजन्! यह सब तेरे और तेरी स्त्रीके पहिले जन्मकी चेष्टा मैंने जान ली. सुन, मैं कहता हूं ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ भारद्वाज बोले ॥ हे राजा! सुन, जिस

कर्मका यह फल है. तू पहिले जन्ममें जीवकी हिंसामें तत्पर शूद्र था ॥ ५३ ॥ तू नास्तिक, दुष्टचारित्र, परस्त्रीगामी, कृतघ्न, दुर्विनीत, सदाचाररहित था ॥ ५४ ॥ और यह तेरी स्त्री विशालाक्षी पूर्वजन्ममें भी कर्ममनवचनसे तुझसे अलग न थी ॥ ५५ ॥ यह महाभागा पतिव्रता नित्य तेरी सेवा करनेवाली कभी तुझपर दुष्ट भाव न करती थी ॥ ५६ ॥ पाप कर्म करनेके कारण तुझे बंधुओंने और मित्रोंने छोड़ दिया और तेरे वृद्धोंका इकट्ठा किया

नास्तिको दुष्टचारित्रः परदारप्रधर्षकः ॥ कृतघ्नो दुर्विनीतश्च सुष्ठ्वाचारविवर्जितः ॥५४॥ इयं या भवतो भार्या पूर्वमप्यायतेक्षणा ॥ कर्मणा मनसा वाचा नान्यदस्यास्त्वया विना ॥ ५५ ॥ पतिव्रता महाभागा भजमाना निरंतरम् ॥ भावं न कुरुते दुष्टं तवोपरि तथा सति ॥ ५६ ॥ सखिभिस्त्वं परित्यक्तो बंधुभिः पापकर्मकृत् ॥ क्षयं जगाम चार्थो यः संचितस्तव पूर्वजैः ॥५७॥ नष्टे द्रव्ये फलाकांक्षी त्वमासीर्जगतीपते ॥ पूर्वकर्मविपाकेन कृषिश्च विफला गता ॥ ५८ ॥ ततो वित्ते परिक्षीणे परित्यक्तश्च बांधवैः॥ क्षीयमाणापि साध्वीयमत्यजत्त्वां न भामिनी ॥ ५९ ॥ त्वं भग्नः सर्वकामेभ्यो गतवान्निर्जने वने ॥ हत्वा जीवाननेकांश्च चकारात्मविपोषणम् ॥ ६० ॥ एवं प्रवृत्तस्य तव सह पत्न्या तदा नृप ॥ गतानि बहुवर्षाणि पापवृत्त्या महीतले ॥ ६१ ॥

मार्ग ९-२०

हुआ धनभी (जो तेरे पास था) नष्ट हो गया ॥ ५७ ॥ हे पृथ्वीनाथ ! धन नष्ट होनेपर तैने फलकी इच्छा की और खेती करनेलगा तो पहिले कर्मोंके विरोधसे खेतीभी निष्फल हुई. ॥ ५८ ॥ धन नष्ट होने और बंधुओंसे छोड़े जानेपर भी तुझे क्षीणताको प्राप्त होती हुई इस साध्वी स्त्रीने न छोड़ा ॥ ५९ ॥ तू सब कामनाओंसे भग्न हो निर्जन वनमें जा अनेक जीवोंको मार २ कर अपना पालन करने लगा ॥ ६० ॥ हे राजन ! स्त्री सहित इसप्रकार पाप

वृत्ति करते हुए तुझे पृथ्वीपर बहुत वर्ष बीते ॥ ६१ ॥ हे राजन् ! किसीदिन दिशा विदिशा भूले हुए भूखप्याससे अति पीडित विप्रवर देवशर्मा नाँमें महामुनि मार्ग भूल कर मध्यान्ह समय वनमें आपड़े ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ हे राजन् ! दुःखसे पीड़ित उन्हें देखकर तुझे दया आई. तैंने उन अज्ञात और पृथ्वीपर पडेहुए वृद्ध ब्राह्मणको हाथसे उठाकर कहा. हे विप्रर्षि ! मुझपर प्रसन्न हो और मेरे आश्रममें आओ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ यह कमलोंसे सुशोभित,

अन्यस्मिन्वासरे राजन् मार्गभ्रष्टो महामुनिः ॥ न दिशं विदिशं वेत्ति देवशर्मा द्विजोत्तमः ॥ ६२ ॥ क्षुत्तृषापीडितोत्यर्थं मध्याह्न-गदिवाकरे ॥ पतितो वनमध्ये तु मार्गभ्रष्टो महीपते ॥ ६३ ॥ दया जाता च त भूप दृष्ट्वा दुःखेन पीडितम् ॥ ब्राह्मणं वृद्धमज्ञातं गृहीत्वा तु करेण वै ॥६४॥ उत्थाप्य पतितं भूमौ त्वयोक्तं हि तदा नृप ॥ प्रसादं कुरु विप्रर्षे आगच्छ त्वं ममाश्रमम् ॥६५॥ जलपूर्णं तडागं च पद्मिनीखंडमंडितम् ॥ वृक्षैर्मनोहरैर्युक्तं फलैः पुष्पैर्मनोरमैः ॥६६॥ स्नात्वा सुशीतले तोये कृत्वा कर्म च नैत्य-कम् ॥ कुरु विप्र फलाहारं पिब वारि सुशीतलम् ॥ ६७ ॥ सुखेन कुरु विश्रामं मया संरक्षितः स्वयम् ॥ तृप्तिपर्यंतं विप्रेंद्र वस त्वं च ममाश्रमे ॥ ६८ ॥ उत्तिष्ठ त्वं द्विजश्रेष्ठ प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ लब्धसंज्ञस्तदा विप्रः श्रुत्वा शूद्रस्य भाषितम् ॥ ६९ ॥ करं जग्राह तं शूद्रं गतो यत्र जलाशयः ॥ उपविष्टो महाबाहो छायामाश्रित्य तत्तटे ॥ ७० ॥

॥ २३ ॥

जलसे भरा हुआ, मनोहर वृक्ष और मनोरम फल और पुष्पोंसें युक्त तडाग है ॥ ६६ ॥ हे विप्र ! इस निर्मल शीतल जलमें स्नानादि नित्यकृत्य करके फलोंका भोजन करो और शीतल जल पियो ॥ ६७ ॥ हे विप्रेंद्र ! मुझसे रक्षित होकर सुखपूर्वक विश्राम करो और तुमको चाहिये उतने दिन मेरे आश्रममें रहो ॥ ६८ ॥ हे द्विजवर ! उठो और मुझपर प्रसन्न होओ. ऐसे शूद्रके वचन सुन ब्राह्मण चेतनताको प्राप्त हो, शूद्रका हाथ पकड़, जलाशयके निकट जा, उसके

किनारे छायामें बैठा ॥ ६९ ॥ ७० ॥ विधिपूर्वक स्नान करके विष्णु भगवानका पूजन और देव पितरोंका तर्पण किया और शीतल जल पिया ॥ ७१ ॥ विप्रवर देवशर्माने वृक्षकी जड़में विश्राम किया तब शूद्रने स्त्रीसहित मुनिको साष्टांग प्रणाम करके, मुनिके समीप जाकर परमभक्तिसे कहा, हम दोनोंके उद्धार करनेके निमित्त आप अतिथि यहां प्राप्त हुए हैं ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ हे विप्रर्षि ! तुह्मारे दर्शनसे हमारा पाप नष्ट होगया. फिर शूद्रने अपनी स्त्रीसे कहा;

स्नानं चकार विधिवत्पूजयामास केशवम् ॥ तर्पयित्वा पितॄन्देवान्पपौ नीरं सुशीतलम् ॥ ७१ ॥ विश्रांतो वृक्षमूलेभूद्देवशर्मा द्विजोत्तमः ॥ साष्टांगं मुनये कृत्वा नमस्कारं सह स्त्रिया ॥ ७२ ॥ शूद्रस्तु परया भक्त्या प्रोवाच मुनिसंन्निधौ ॥ आवयोस्तरणार्थाय अतिथिस्त्वं समागतः ॥७३॥ दर्शनात्तव विप्रर्षे जातः पापस्य संक्षयः ॥ प्रिये फलानि स्वादूनि प्रयच्छास्मै द्विजातये ॥ मृदूनि रसयुक्तानि सुपक्वानि प्रियाणि च ॥ ७४ ॥ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ ॥ त्वामहं नैव जानामि स्वज्ञातिं कथयस्व मे ॥ नाज्ञातस्य हि भोक्तव्यं ब्राह्मणस्यापि पुत्रक ॥ ७५ ॥ शूद्र उवाच ॥ ॥ शूद्रोहं द्विजशार्दूल न कार्यः संशयस्त्वया ॥ आत्मजैर्दुर्जनैर्विप्र परित्यक्तः स्वबंधुभिः ॥ ७६ ॥

हे प्रिये ! स्वादिष्ट मधुर रसयुक्त पके फल इन विप्रवरको दे ॥ ७४ ॥ ब्राह्मण बोला ॥ मैं तुझे नहीं जानता हूं मुझसे अपनी जातीको कहो. हे पुत्र ! अज्ञात ब्राह्मणका भी भोजन न करना चाहिये ॥ ७५ ॥ शूद्र बोला ॥ हे विप्रवर ! मैं शूद्र हूं. मेरे दुष्ट बंधुओंने मुझे छोड दिया है. इसमें आप संशय न

करें ॥ ७६ ॥ उन दोनोंके ऐसे कहनेपर शूद्रकी स्त्रीने उस ब्राह्मणको फल दिये और ब्राह्मणने वह फल खाये ॥ ७७ ॥ और सुंदर शीतल जल पीकर प्रसन्न हो. सुखपूर्वक वृक्षकी जडमें विश्राम किया ॥ ७८ ॥ वह शूद्र स्त्रीसहित भोजन कर फिर वहां आया और कहा; हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम्हारा आगमन बहुत श्रेष्ठ हुआ. आप कहांसे यहां आये ॥ ७९ ॥ यह शून्य वन है, दुष्ट जंतुओंसे भरा हुआ है, मनुष्योंसे रहित है, दुःखसे युक्त है,

तयोः संवदतोरेवं शूद्रपत्न्या फलानि च॥ दत्तानि तस्मै विप्राय तेन भुक्तानि तानि वै ॥७७॥अभूत्प्रीतमना विप्रःपीत्वा नीरं सुशीतलम्॥सुखं संप्राप्य स मुनिर्विश्रांतस्तरुमूलके ॥ ७८ ॥ स च शूद्रः सपत्नीको भुक्त्वा च पुनरागतः ॥ स्वागतं ते मुनिश्रेष्ठ कुतस्त्वमिह चागतः ॥७९॥ शून्याटवीं द्विजश्रेष्ठ दुष्टसत्वभयाकुलाम्॥ निर्मनुष्यां दुःखयुक्तां दिवारात्रं भयानकाम् ॥ ८० ॥ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ ब्राह्मणोहं महाभाग प्रयागगमनं प्रति॥अहमज्ञातमार्गेण प्रविष्टो दारुणे वने॥८१॥ मम पुण्यप्रभावेन जातोसि वरबांधवः ॥ जीवितं मे त्वया दत्तं ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ ८२ ॥ भवानपि कुतः प्राप्तो निर्मनुष्ये वने खलु ॥ को भवान् कारणं किंस्वित् कथयस्व ममाग्रतः ॥८३॥ शूद्र उवाच ॥ विदर्भनगरी राज्ञा भीमसेनेन रक्षिता ॥ वासो मम महाराष्ट्रे शूद्रोहं पापलंपटः ॥ ८४ ॥

दिनरात भयानक है ॥ ८० ॥ ब्राह्मण बोले ॥ हे महाभाग ! मैं ब्राह्मण हूं, मैं प्रयागको जाता था, मैं विनाजाने मार्गमें जाकर दारुण वनमें घुस गया ॥ ८१ ॥ मेरे पुण्यप्रतापसे तू श्रेष्ठ बंधु यहांपर मिला. तैंने मुझे जीवन दिया. तूं कह मैं तेरा क्या उपकार करूं ॥ ८२ ॥ तूं इस निर्जन वनमें कहांसे आया ? तूं कौन है ? यहां आनेका क्या कारण है ? यह सब मेरे आगे कहिये ॥ ८३ ॥ शूद्र बोला राजा भीमसेनसे रक्षित एक विदर्भ नगरी है, वह

महाराष्ट्र देशमें है, वहां मेरा निवास है, मैं महापापी शूद्र हूं ॥ ८४ ॥ हे द्विजोत्तम ! मैंने अपना विहित धर्म त्याग दिया और मुझे मेरे बंधुओंने त्याग दिया. इसकारण मैं वनमें चला आया हूं ॥ ८५ ॥ मैं नित्य जीवोंका वध करके स्त्रीसहित जीता हूं. हे महामुनि ! अब मैं सब पापोंसे अतिशय दुःखी हूं ॥ ८६ ॥ हे प्रभो ! मझ पापीपर आप कृपा करो. हे द्विजोत्तम ! मेरे पुण्यप्रतापसे आप यहां आये हैं ॥ ८७ ॥ हे महामुनि ! मुझपर प्रसन्न

स्वकर्मविहितो धर्मो मया त्यक्तो द्विजोत्तम ॥ त्यक्तोहं बंधुवर्गेण ततोऽहं वनमागतः ॥ ८५ ॥ कृत्वा जीववधं नित्यं जीवेहं भार्यया सह ॥ सांप्रतं पातकात्सम्यङ् निर्विण्णोस्मि महामुने॥८६॥कुरुष्वानुग्रहं किंचित्पापयुक्तस्य मे प्रभो ॥ मम पुण्यप्रभावेन आगतस्त्वं द्विजोत्तम ॥८७॥ न पश्यामि यथा सौरिं पत्न्या सह महामुने ॥ उपदेशप्रभावेन प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ८८ ॥ नान्यदिच्छाम्यहं किंचिन्मुक्त्वा देवं जनार्दनम् ॥ कुरुष्वानुग्रहं मेद्य प्रसादमृषिसत्तम ॥ ८९ ॥ ॥ भारद्वाज उवाच ॥ ॥ इति तेन सम्प्रापृष्टो देवशर्मा द्विजाग्रणीः ॥ शूद्रेण परया भक्त्या प्रहसन्वाक्यमब्रवीत् ॥ ९० ॥ ॥ इतिश्रीस्कंदपुराणे मार्गशीर्षमाहात्म्ये विष्णुब्रह्मसंवादे एकादश्याख्यानं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

होकर ऐसा उपदेश करो जिससे स्त्रीसहित मैं सौरि (यम) को न देखूं ॥ ८८ ॥ और जनार्दन विष्णु भगवानके सिवाय मुझे कोई इच्छा नहीं है. हे ऋषिसत्तम ! मुझपर कृपा कर अनुग्रह करो ॥ ८९ ॥ भारद्वाज बोले, जब शूद्रने परमभक्तिपूर्वक इसप्रकार कहा तो ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ देवशर्मा हंसते हुए यह वचन बोले ॥ ९० ॥ इतिश्रीस्कंदपुराणे मार्गशीर्षमाहात्म्ये विष्णुब्रह्मसंवादे एकादश्याख्यानभाषायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

देवशर्मा बोले ॥ विष्णुभक्तिसें सहसा तेरी ऐसी बुद्धि हुई इसकारण तेरे पहिले सैंकडों जन्माके पाप नष्ट हुए ॥ १ ॥ विनाही व्रतों और तीर्थोंसे तू करोडों पापोंसे छूटा; मेरे आतिथ्य और भक्तिसे तैंने विष्णुलोक पाया ॥ २ ॥ उसी पुण्य प्रतापसे तेरी ऐसी बुद्धि हुई. मैंने अपने मनमें विचार और ध्यान करके तेरी पूर्व जन्मकी सब चेष्टा जान ली ॥ ३ ॥ तू प्रथम जन्ममें अवंति पुरीमें धर्ममें तत्पर, नित्य वेदपाठी, सुशील, सदा व्रत करनेवाला

देवशर्मोवाच॥तवेदृशी मतिर्जाता सहसा केशवोपरि॥ एतस्मात्ते गतं पापं पूर्वजन्मशतोद्भवम्॥१॥विना व्रतैर्विना तीर्थैर्मुक्तस्त्वं
पापकोटिभिः ॥ ममातिथ्येन भक्त्या च जातं तव हरेः पदम् ॥ २ ॥ तेन पुण्यप्रभावेन मतिर्जाता तवेदृशी ॥ ध्यात्वा संचिंत्य
मनसा ज्ञातं पूर्वविचेष्टितम् ॥ ३ ॥ पूर्वजन्मनि विप्रस्त्वमवंत्यां धर्मतत्परः ॥ सदाध्ययनशीलश्च सुशीलश्च सदा व्रती ॥ ४ ॥
एका तु द्वादशी विष्णोः कृता दशमिसंयुता ॥ तत्पापस्य प्रभावेन समस्तं सुकृतं गतम् ॥ ५ ॥ सर्वं तद्विफलं जातं यथा
शूद्रापतिर्द्विजः ॥ बहुवर्षसहस्राणि प्राप्ता नरकयातना ॥ ६ ॥ तस्मादेवं त्वया पूर्वं कृतं दुष्टं चिरं बहु ॥ कृता तु दशमीमिश्रा
तिथिर्विष्णोर्महात्मनः ॥ ७ ॥ तेन शूद्रो भवाञ्जातः पापे तव मतिस्तथा ॥ धर्मे न रमते चित्तं दशमीवेधदूषितम् ॥ ८ ॥

ब्राह्मण था ॥ ४ ॥ तैंने दशमीविद्ध एकादशीका एक व्रत किया, उसके पापसे तेरा सारा पुण्य जाता रहा ॥ ५ ॥ तेरा सब पुण्य इसप्रकार नष्ट हो गया. जैसे ब्राह्मण शूद्रका पति होनेसे नष्ट होजाता है. तब तैंने अनेक सहस्र वर्ष नरकयातना भोगी ॥ ६ ॥ इसकारण पहिले तैंने बहुत समयतक दुष्टता की. तैंने महात्मा विष्णुकी एकादशी तिथि दशमीविद्धा की ॥ ७ ॥ इसकारण तू शूद्र हुआ और तेरी बुद्धि पापमें प्रविष्ट हुई. दशमीयुक्त एकादशी

करनेसे धर्ममें चित्त नहीं लगता ॥ ८ ॥ हे वत्स ! विदर्भ नगरमें तेरी पुत्रीका पुत्र है. उसने विधिपूर्वक एकादशीका व्रत किया ॥ ९ ॥ उसने उस एकादशीके व्रतका पूर्ण फल तुझे दिया तो तेरी बुद्धि धर्मयुक्त हुई और पाप नष्ट हुआ ॥ १० ॥ उस एकादशीके पुण्यप्रभावसे दशमीवेधा एकादशीका तेरा पाप यमने नष्ट कर दिया ॥ ११ ॥ इस जन्म और सहस्रों जन्मके किये हुए तेरे पाप यमराजाने नष्ट कर दिये ॥ १२ ॥ वे दोनों यह

विदर्भनगरे वत्स अस्ति ते पुत्रिकासुतः ॥ कृतं तेन विधानोक्तं हरेरेकादशीव्रतम् ॥ ९ ॥ प्रदत्तं तेन तत्पुण्यमखंडैकादशीव्रतम् ॥ धर्मोपरि मतिर्जाता जातः पापस्य संक्षयः ॥ १० ॥ तेन पुण्यप्रभावेन एकादश्या व्रतेन च ॥ दशमीवेधजं पापं यमेन परिमार्जितम् ॥ ११ ॥ इह जन्मनि यत्पापं जन्मायुतकृतानि च ॥ मार्जितानि यमेनैव पापानि तव सांप्रतम् ॥ १२ ॥ तयोर्विवदतोरेवं विष्वक्सेनः समागतः ॥ वर्णावर स्वागतं ते तुष्टस्तेहं जनार्दनः ॥ १३ ॥ विप्रस्यातिथ्यहेतुत्वाज्जातः पापस्य संक्षयः ॥ परदत्तेन पुण्येन एकादश्या व्रतेन च ॥ १४ ॥ दशमीवेधजं पापं तव शूद्र लयं गतं ॥ व्रतं कृत्वा ददौ पुण्यं दौहित्रस्तेन तारितः ॥ १५ ॥ पत्न्या सह महाभाग वैनतेयं समारुह ॥ इत्युक्त्वा देवदेवेन विमाने स्थापितस्तदा ॥ १६ ॥

कहही रहे थे, उसीसमय विष्वक्सेन (विष्णु) आये. उन्होंने कहा हे शूद्र ! तेरा स्वागत हो. मैं जनार्दन तुझपर प्रसन्न हुआ ॥ १३ ॥ ब्राह्मणका अतिथिसत्कार करनेसे तेरे पाप नष्ट हुए. और पराये दिये हुए एकादशीके व्रतके पुण्यसे ॥ १४ ॥ तेरे दशमीके वेधका पाप नष्ट हुआ, तेरे दौहित्र (धेवते) ने व्रत करके उसका पुण्य तुझे दिया उसने तेरा उद्धार किया ॥ १५ ॥ हे महाभाग ! स्त्रीसहित गरुड़पर स्थित हो. यह कह देवदेव (विष्णु भगवान)

ने उसे विमान पर बैठाया ॥ १६ ॥ हे नृपोत्तम! इसप्रकार शूद्रत्व पाकर तुम स्त्रीसहित स्वर्ग गये. और देवशर्मा ब्राह्मण फिर प्रयागको गये ॥ १७ ॥ जो तुमने पूछा था सो सब कह सुनाया. अखंड एकादशीके पुण्यसे और आये हुए ब्राह्मणके आतिथ्यसे तुमने यह विष्णुकी भक्ति करनेवाली स्त्री और निष्कंटक राज्य पाया ॥ १८ ॥ राजा बोले ॥ हे ब्रह्मन्! विष्णुको प्रसन्न करनेके लिये सम्यक् प्रकारसे अखंडित

स्वर्गं ततः सपत्नीकः शूद्रत्वेन नृपोत्तम ॥ देवशर्मा तु विप्रो वै तीर्थराजं ययौ पुनः ॥ १७ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्त्वया परिपृच्छितम् ॥ अखंडैकादशीपुण्यात्प्राप्तस्यातिथ्यकारणात् ॥ विष्णुभक्तिमती भार्या राज्यं निहतकंटकम् ॥ १८ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मन्नखंडैकादश्या विधिं सम्यक् समादिश ॥ विष्णोः संप्रीणनार्थाय प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ १९ ॥ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ शृणुष्व नृपशार्दूल एकादश्या विधिं शुभम् ॥ पुराऽऽसीद्भगवान्विष्णुर्नारदाय यदुक्तवान् ॥ २० ॥ तत्तेहं संप्रवक्ष्यामि उद्यापनविधिं शुभम् ॥ मार्गशीर्षादिमासेषु द्वादशीषु नरोत्तम ॥ २१ ॥ व्रतं शुभमिदं कार्यमखंडैकादशीव्रतम् ॥ दशम्यां चैव नक्तं च एकादश्यामुपोषणम् ॥ २२ ॥ द्वादश्यामेकभुक्तं च अखंडा इति कथ्यते ॥ दिवसस्याष्टमे भागे मंदीभूते दिवाकरे ॥ २३ ॥

एकादशीकी विधि कृपा करके कहिये ॥ १९ ॥ ऋषि बोले ॥ हे नृपश्रेष्ठ! एकादशीकी श्रेष्ठ विधि जो पहिले विष्णु भगवानने नारदसे कही थी सो मैं तुमसे कहता हूं और सुंदर उद्यापनकी विधि भी कहता हूं, सुनो. हे नरोत्तम! मार्गशिरादि मासोंमें अखंडित एकादशीका श्रेष्ठ व्रत करै. दशमीको नक्त भोजन करै, एकादशीको उपवास करै ॥ २० ॥ २१ २२ ॥ द्वादशीको एकवार भोजन करै यह अंखडा एका-

दशी कहलाती है. जब दिनका आठवां भाग रहै और सूर्यनारायण भी अल्प प्रकाशक हो जावें उसे नक्त भोजन जानना. रात्रिके भोजनको नक्तभोजन नहीं कहते. कांसपात्र, मांस, मसूर, चना, कोदों, शाक, मधु, पराये घरका अन्न, दूसरीवार भोजन, मैथुन, यह दश दशमीको विष्णुभक्त मनुष्य वर्जे करै ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ यह दशमीकी विधि कही; अब एकादशीकी विधि सुनो. दूसरीवार जल पीना, हिंसा, अशौच, असत्य-

तद्धि नक्तं विजानीयान्न नक्तं निशि भोजनम् ॥ कांस्यं मांसं मसूरांश्च चणकान् कोद्रवांस्तथा ॥ २४ ॥ शाकं मधु-
परान्नं च पुनर्भोजनमैथुने ॥ विष्णुभक्तो नरो वापि दशम्यां दश वर्जयेत् ॥ २५ ॥ दशम्या विधिरुक्तोयमेकादश्या-
स्तथा शृणु ॥ असकृज्जलपानं च हिंसाशौचमसत्यता ॥ २६ ॥ तांबूलं दंतकाष्ठं च दिवाशयनमैथुने ॥ द्यूतं क्रीडा
निशि स्वापः पतितैः सह भाषणम् ॥ एकादश्या दशैतानि विष्णुभक्तस्तु वर्जयेत् ॥ २७ ॥ अद्य मे स्त्रीसुखं नास्ति
भोजनं नास्ति केशव ॥ प्रीत्यर्थं तव देवेश नियमस्तु दिवा निशि ॥२८॥ सुप्तेंद्रियैस्तु वैक्लव्यं भोजनं यच्च मैथुनम् ॥
दंतांतरविलग्नान्नं क्षमस्व पुरुषोत्तम ॥ २९ ॥

ता, तांबूल, दतौन, दिनका सोना, मैथुन, जुवा खेलना, रातका सोना, पतितोंसें संभाषण, ये दश काम विष्णुभक्त एकादशीको वर्ज्य करै ॥ २६ ॥ ॥ २७ ॥ और विनय करै कि, हे केशव! आज मुझे स्त्रीका सुख नहीं है, भोजनका सुख नहीं है. हे देवेश! आपकी प्रीतिके निमित्त रात्रि दिनके लिये मैंने यह नियम किया है ॥ २८ यदि स्वप्नमें मुझसे इंद्रियोंका विकार भोजन वा मैथुन हो उसे और दांतोंके मध्यमें लगी हुइ उच्छिष्टकी क्षमा कीजिये ॥ २९ ॥

पापकर्म और पापकर्म करनेवालोंसे निवृत्ति और गुणवानोंके साथ वास करना उसको उपवास कहते हैं. शरीरका सुखाना उपवास नहीं है ॥ ३० ॥ विष्णुभक्त पूर्वोक्त दश काम और पराये घरका अन्न तथा मधु, शरीरका मलनाआदि द्वादशीको वर्जन करै ॥ ३१ ॥ हे गरुडध्वज (विष्णु)! आज मैं पुण्यदायिनी पापनाशिनी पवित्र द्वादशीको पारणा करता हूं. आप प्रसन्न हूजिये ॥ ३२ ॥ आपकी प्रीतिके लिये जो मैंने नियम किया है अतएव आपकी

उपावृत्तस्तु पापेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह ॥ उपवासः स विज्ञेयो न शरीरस्य शोषणम् ॥ ३० ॥ पूर्वोक्तानि दशैतानि
परान्नं च तथा मधु ॥ द्वादश्यां विष्णुभक्तो वै वर्जयेन्मर्दनादिकम् ॥ ३१ ॥ अद्य मे द्वादशी पुण्या पवित्रा पापना-
शनी ॥ पारणं च करिष्यामि प्रसीद गरुडध्वज ॥ ३२ ॥ विष्णोः संतोषणार्थाय यो मया नियमः कृतः ॥ अद्याहं
भोजयिष्यामि त्वत्प्रसादाद्द्विजोत्तमम् ॥ ३३ ॥ अनेन विधिना कुर्याद्यावद्वर्षं समाप्यते ॥ संपूर्णे तु ततो वर्षे कुर्यादु-
द्यापनं बुधः ॥ ३४ ॥ आदौ मध्ये तथाचांते व्रतस्योद्यापनं स्मृतम् ॥ उद्यापनं न कुर्याद्यः कुष्ठी चांधश्च जायते ॥
॥ ३५ ॥ तस्मादुद्यापनं कुर्याद्यथाविभवसारतः ॥ क्रियते शुक्लपक्षे च मासे मार्गशिरे शुभे ॥ ३६ ॥ आमंत्र्य द्वादश-
मितान् ब्राह्मणान्विधिकोविदान् ॥ त्रयोदशं सपत्नीकमाचार्यं विधिकोविदम् ॥ ३७ ॥

प्रसन्नताके कारण मैं ब्राह्मणको जिमाता हूं ॥ ३३ ॥ इस विधिसे वर्ष भरतक व्रत करै. वर्ष पूर्ण होनेपर उद्यापन करै ॥ ३४ ॥ आदि मध्य और अंतमें व्रतका उद्यापन कहा गया है. जो उद्यापन नहीं करता वह कुष्ठी और अंधा होता है ॥ ३५ ॥ इसकारण यथाशक्ति शुभ मार्गशिर शुक्लएकादशीमें उद्यापन करै ॥ ३६ ॥ विधिके जाननेवाले वारह ब्राह्मणोंको और तेरहवें विधिके जाननेवाले सपत्नीक (स्त्रीसहित) आचार्यको निमंत्रण देवै ॥ ३७ ॥

यजमान पवित्र हो स्नानकर श्रद्धायुक्त जितेंद्रियतापूर्वक गुरु और ब्राह्मणोंके चरण धो, अर्घ्य दे, वस्त्रादिसे पूजन करै ॥ ३८ ॥ फिर आचार्य सुंदर वर्णोंसे मंडल कर सर्वतोभद्र कमल चक्र बनाय, श्वेतवस्त्रसे वेष्टित कर ॥ ३९ ॥ पंचरत्नसे समन्वित, पंचपल्लवयुक्त, कपूर और अगरुसे सुगंधित, रक्तवस्त्र और ताम्रपात्रयुक्त, पुष्पोंकी मालाओंसे वेष्टित, जलसे भरा हुआ कलश मंडलके ऊपर रक्खै ॥ ४० ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! उसके ऊपर लक्ष्मीनारायणजीको स्थापन

यजमानः शुचिः स्नात्वा श्रद्धायुक्तो जितेंद्रियः ॥ पादशौचार्घवस्त्राद्यैराचार्यादींस्ततोऽर्चयेत् ॥ ३८ ॥ आचार्यस्तु ततः कृत्वा मंडलं वर्णकैः शुभैः ॥ चक्राब्जं सर्वतोभद्रं श्वेतवस्त्रेण वेष्टितम् ॥ ३९ ॥ जलपूर्णं च कुंभं तु पंचरत्नसमन्वितम् ॥ पंचपल्लवसंयुक्तं कर्पूरागुरुवासितम् ॥ ४० ॥ वेष्टितं रक्तवस्त्रेण ताम्रपात्रेण संयुतम् ॥ वेष्टितं पुष्पमालाभिर्मंडलोपरि विन्यसेत् ॥ ४१ ॥ तस्योपरि न्यसेद्देवं लक्ष्मीनारायणं नृप ॥ सौवर्णी प्रतिमा कार्या एककर्षप्रमाणतः ॥ ४२ ॥ वाहनायुधसंयुक्ता प्रमाणं चतुरंगुलम् ॥ किंवा शक्त्या प्रकुर्वीत वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ॥ ४३ ॥ ततः संस्थापयेन्मूर्तिं मंडले द्वादशैव हि ॥ मासानामधिपः पूज्यश्चाखंडव्रतहेतवे ॥ ४४ ॥ मंडलात्पूर्वदिग्भागे शंखं संस्थापयेच्छुभम् ॥ त्वं पुरासागरोत्पन्नो विष्णुना विधृतः करे ॥ निर्मितः सर्वदेवैस्त्वं पांचजन्य नमोस्तु ते ॥ ४५ ॥

करै. उनकी प्रतिमा एक कर्ष सोनेकी बनवावे ॥ ४२ ॥ वह वाहन और आयुधोंसे युक्त प्रमाणमें चार अंगुलकी हो तथा जितनी शक्ति हो उतनें सुवर्णकी मूर्ति बनवावे ॥ ४३ ॥ फिर मंडलके ऊपर बारह मूर्ति स्थापन करै, मासोंका अधिपति (मार्गशिर) अखंड व्रतके लिये पूज्य है ॥ ४४ ॥ मंडलके आगे पूर्व दिशामें शोभायमान शंखको स्थापन करै, तू पहिले समुद्रसे उत्पन्न हुआ है, तुझे विष्णुने हाथमें धारण किया है, और सब देवतोंने

तुझे निर्माण किया है. हे पांचजन्य ! तुझे नमस्कार है ॥ ४५ ॥ फिर मंडलसे उत्तर दिशामें वेदी रच, संकल्प कर, वेदोक्त और विष्णुमंत्रोंसे होम करै ॥ ४६ ॥ अपने स्थानमें विष्णुको स्थापन करै और तिन हरिकी आरती करै, पुरुपसूक्त और श्रेष्ठ पौराणिक मंत्रोंसे पूजन करै. नैवेद्यके लिये बहुतसे लड्डु बनावे. फिर धूप दीप कर, भेट दे, आरती कर, चन्दन धूप आदिसे पूजन करके, प्रदक्षिणा करै. हे राजन ! फिर हे आचाय ! ब्राह्मण क्रमपूर्वक

ततस्तु स्थंडिलं कार्यं मंडलादुत्तरां दिशम् ॥ संकल्प्य हवनं कार्यं मंत्रैर्वेदोक्तवैष्णवैः ॥ ४६ ॥ स्वस्थाने स्थापयेद्विष्णुं स्थापयेच्च हरिं प्रति ॥ पूजयेत्पुरुषसूक्तेन मंत्रैः पौराणिकैः शुभैः ॥ ४७ ॥ नैवेद्यार्थं च वै कार्या मोदका बहवोपि च ॥ धूपदीपोपहाराणि कृत्वा नीराजनं ततः ॥ ४८ ॥ यक्षकर्दमेन संपूज्य ततः कुर्यात्प्रदक्षिणाम् ॥ स्वस्तिवाचनकै-र्विप्रैर्नमस्कारं ततो नृप ॥ ४९ ॥ ततस्तु ब्राह्मणैः कार्यं आचार्यक्रमशो जपः ॥ जपश्च पावमानीयमंडलं ब्राह्मणं मधु ॥ ५० ॥ तेजोसि शुक्रजं वाचं ब्रह्मसामादनंतरम् ॥ पवित्रवंतं सूर्यस्य विष्णोर्महसि संहिताम् ॥ ५१ ॥ जपांते कलशे विष्णुं सोपांगमुपरि न्यसेत् ॥ दिवसस्योदये चैव होमं कुर्यादनु क्रमम् ॥ ५२ ॥ संस्थाप्य प्रथमं पात्रं पूजयित्वा विधानतः ॥ स्तवनं च ततो होमः कर्तव्यश्चरुपूर्वकः ॥ ५३ ॥

स्वास्तिवाचन नमस्कार कर, जप करै पवमानसूक्तका पाठ करै, मंडलब्राह्मणका पाठ करै, मधुमंत्रोंका पाठ करै ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ तेजोऽसि इत्यादिका पाठ करै, ब्रह्मसामका पाठ करै, तदनन्तर सूर्य्यके पवित्रवंतं इत्यादिका पाठ करै, फिर विष्णुभगवान्की दिव्यसंहिताका पाठ करै, जपके अनन्तर कलशकेविषै उपाङ्गसहित विष्णुभगवान्को स्थापन करै सूर्य्योदय होनेपर क्रमपूर्वक होम करै ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ पहिले पात्र स्थापन कर, विधिपूर्वक पुजन स्तवन

कर, चरुपूर्वक होम करै ॥ ५३ ॥ अपने गृह्यसूत्रमें कहे हुए विधानसे यज्ञकी अग्निक्रियामें तत्पर हो, दो चरु करै. पायस (दूधका बना हुआ) विष्णु देवताके लिये एक चरु करै ॥ ५४ ॥ उस चरुकी सोलह आहुति पुरुषसूक्तसे होम करै. फिर घृतयुक्त चरुकी चार आहुति और देवे ॥ ५५ ॥ घृतमें भीगी हुई प्रादेश मात्र (बार आंगल) लंबी ढाककी समिधा कर्मकी सिद्धिके लिये 'इदं विष्णु' इस मंत्रसे होम करै ॥ ५६ ॥ ये सौ आहुति होम करै और द्विगुणी (दोसौ)

स्वगृह्योक्तविधानेन यजनाग्निक्रियापरः ॥ चरुद्वयं च कुर्वीत पायसं वैष्णवं चरुम् ॥ ५४ ॥ जुहुयात्पुरुषसूक्तेन चरोः षोडश चाहुतीः ॥ तथा चतुर्गृहीतेन घृतयुक्तावराहुतिम् ॥ ५५ ॥ प्रादेशमात्राः पालाशसमिधश्च घृतप्लुताः॥ इदं विष्णिवति मंत्रेण होतव्याः कर्मसिद्धये ॥ ५६ ॥ शतमेकं तु जुहुयाद्विगुणाश्च तिलाहुतीः ॥ कृते च वैष्णवे होमे ग्रहयज्ञं समारभेत् ॥ ५७ ॥ समिद्भिश्चरुहोमं च तिलहोमं क्रमेण तु ॥ उभयोः स्वस्तिकं वाच्यं ततः पूजां समाचरेत् ॥ ५८ ॥ ऋत्विजां च ततो दद्याद्धेन्वादिग्रहदक्षिणाः ॥ देवस्य तृप्त्यै दद्याच्च ब्राह्मणाय यथाविधि ॥ ५९ ॥ गां वै पयस्विनीं दद्याद्वृषभं च सुशोभनम् ॥ ब्राह्मणानां ततो दद्यात्त्रयोदशपदानि च ॥ ६० ॥

तिलोंकी आहुति दे, वैष्णव होम करके ग्रहयज्ञका आरंभ करै ॥ ५७ ॥ समिधोंसे क्रमपूर्वक चरुहोम और तिलहोम करै. दोनोंमें स्वस्तिवाचन करै, फिर पूजा करै ॥ ५८ ॥ फिर ऋत्विजोंको गौआदि ग्रहदक्षिणा दे और देवतृप्तिके निमित्त ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक दुधारी गौ और सुंदर बैल दे, फिर ब्राह्म-

णोंको तेरह पद देवै ॥ ५९ ॥ ६० ॥ स्त्री सहित आचार्यको वस्त्र धनादि दान देकर प्रसन्न करै ॥ ६१ ॥ जलसे भरे पचीस घडे वस्त्रोंसे वेष्टित पारणकी रात्रिमें ब्राह्मणोंको देवै ॥ ६२ ॥ फिर बहुत दक्षिणा दे और बंधुओंको स्वादिष्ट भोजन करावै. फिर आचार्यको दक्षिणा सहित पूर्ण पात्र दे ॥ ६३ ॥ पूर्ण पात्र देनेसे कार्य पूर्ण होता है. और उपवासव्रत करनेसे तीर्थमें स्नान करनेका फल प्राप्त होता है ॥ ६४ ॥ और ब्राह्मणोंका कहा हुआ

आचार्यं तु सपत्नीकं वस्त्रैश्च परितोषयेत् ॥ तोषयित्वा महादानैस्तं सार्थं च समर्पयेत् ॥ ६१ ॥ पंचविंशतिकुंभांश्च सोदकान्वस्त्रवेष्टितान् ॥ ब्राह्मणांश्च ततो दद्यात्कृते पारणके निशि ॥ ६२ ॥ भूरि दानं च दातव्यं बंधूनामिष्टभोजनम् ॥ पूर्णपात्रं ततो दद्यादाचार्याय सदक्षिणम् ॥ ६३ ॥ पूर्णपात्रप्रदानेन कार्यं संपूरितं भवेत् ॥ उपवासव्रतं चैव स्नानं तीर्थफलं भवेत् ॥६४॥ विप्रैः संभाषितं तस्य संपूर्णं तद्भवेत्फलम् ॥ वित्तशक्तिर्गृहे नास्ति कृतं चैकादशीव्रतम् ॥ ६५ ॥ स्वशक्त्या चैव कर्तव्यं तथा चोद्यापनादिकम् ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातमखंडैकादशीव्रतम् ॥ ६६ ॥ इतिश्रीस्कंदपुराणे मार्गशीर्षमाहात्म्ये विष्णुचतुर्मुखसंवादे अखंडैकादशीकथनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

॥ २९ ॥

फल पूर्ण होता है और जो निर्धन हो और एकादशीव्रत किये हों वह अपनी शक्तिके अनुसार उद्यापनादि करै. यह सब तुमसे अखंड एकादशीव्रत कहा ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे मार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे अखंडैकादशीकथननाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

श्रीभगवान बोले ॥ हे पुत्र ! अब मैं जागरणका लक्षण कहता हूं सुनो, जिसके जाननेमात्रसे मैं सदा कलियुगमें सुलभ हूं ॥ १ ॥ गीत, वाद्य, नृत्य, पुराणका पाठ, धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प, गंध–चंदनादि लेपन, फलार्पण, श्रद्धा, दान, इंद्रियोंका जीतना, सत्यता, निद्राका त्याग, आनंदसे मेरे पूजनथी युक्त, आश्चर्य और उत्साहसहित, पाप और आलस्यरहित, प्रदक्षिणायुक्त, नमस्कार, नीरांजनसे युक्त, प्रसन्नचित्त होकर, एक २ पहरमें मेरी आरती

॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि जागरस्य च लक्षणम् ॥ येन विज्ञानमात्रेण सुलभोहं सदा कलौ ॥ १ ॥ गीतं वाद्यं च नृत्यं च पुराणपठनं तथा॥ धूपं दीपं च नैवेद्यं पुष्पं गंधानुलेपनम् ॥२॥ फलार्पणं च श्रद्धां च दानमिंद्रियसंयमम् ॥ सत्यान्वितं विनिद्रं च मुदा मद्यजनान्वितम् ॥३॥ साश्चर्यं चैव सोत्साहं पापालस्यादिवर्जनम् ॥ प्रदक्षिणासमायुक्तं नमस्कार-पुरःसरम् ॥४॥ नीराजनसमायुक्तमतिहृष्टेन चेतसा ॥ यामे यामे महाभाग कुर्यादारार्तिकं मम ॥ ५ ॥ षड्विंशद्गुणसंयुक्तमेका-दश्यां च जागरम् ॥ यः करोति नरो भक्त्या न पुनर्जायते भुवि ॥ ६ ॥ य एवं कुरुते भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ जागरं परया भक्त्या स लीनो ज़ायते मयि ॥७॥ दष्टाः कलिभुजंगेन स्वपंते ये दिने मम॥ कुर्वंति जागरं नैव मायापाशविमोहिताः॥८॥

करै ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ जो मनुष्य भक्तिपूर्वक ऐसे छब्बीस गुणोंसे युक्त हुआ एकादशीका जागरण करता है वह फिर पृथ्वीपर जन्म नहीं लेता ॥ ६ ॥ जो परम भक्तिपूर्वक यथाशक्ति द्रव्य लगाकर जागरण करता है, वह मुझमें लीन होता है ॥ ७ ॥ जो मनुष्य मायाके पाशमें मोहित हुए मेरे

दिनमें सोते हैं और जागरण नहीं करते वे कलिरूप सर्पसे डसे हुए जानने ॥ ८ ॥ कलियुगमें एकादशी आनेपरभी जिनके जागरण नहीं होता वे निस्संदेह नष्ट होते हैं और उनका जीवन चलायमान होता है ॥ ९ ॥ दोनों नेत्रोंको खोलकर और हृदयकेविषे मेरे चरणारविन्दोंका ध्यान करके जो पुरुष होते हुए जागरणको नहीं देखते हैं वह पापी हैं ॥ १० ॥ वाचक (वाचनेवाला) के अभावमें गान और नृत्य करै और हे देवेश ! वाचकके होनेपर पहिले पुराण

प्राप्ताप्यैकादशी येषां कलौ जागरणंविना ॥ ते विनष्टा न संदेहो यस्माज्जीवितमध्रुवम् ॥९॥ उद्धृतं नेत्रयुग्मं च दत्त्वा वै हृदये पदम्॥ कृतं ये नैव पश्यंति पापिनो मम जागरम् ॥१०॥ अभावे वाचकस्याथ गीतं नृत्यं च कारयेत् ॥ वाचके सति देवेश पुराणं प्रथमं पठेत् ॥११॥ अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ॥ पुण्यं कोटिगुणं पुत्र मम जागरणे कृते ॥ १२ ॥ पितृपक्षे मातृपक्षे भार्यापक्षे च मानद ॥ कुलान्युद्धरते चैतन्मम जागरणे कृते ॥ १३ ॥ उपोषणादिने विघ्ने प्रारब्धे जागरे सति ॥ विहाय स्थानं तत्राहं शापं दत्त्वा व्रजाम्यहम् ॥ १४ ॥ अविद्धवासरे ये मे प्रकुर्वंति हि जागरम् ॥ तेषां मध्ये प्रहृष्टः सन्नृत्यं वै प्रकरोम्यहम् ॥ १५ ॥

पढै ॥ ११ ॥ हे पुत्र ! मेरे जागरण करनेसे सहस्र अश्वमेध और सौ वाजपेयसे भी करोड़ों गुणा पुण्य है ॥ १२ ॥ हे मानद ! पितृपक्ष, मातृपक्ष, स्त्रीपक्ष, इन तीनों कुलोंका मेरे जागरणसे उद्धार होता है ॥ १३ ॥ उपवासके जागरणके दिन आरंभ होनेमें जहां विघ्न होता है मैं उस स्थानको छोडकर और शाप देकर चला जाता हूं ॥ १४ ॥ जो अविद्ध वासर (पूर्णतिथि) में जागरण करते हैं मैं प्रसन्न होकर उनके वीचमें नृत्य करता हूं ॥ १५ ॥

जितने दिन मेरे समीप जागरण करता है उतनेही दश सहस्र वर्ष मेरे स्थानमें वसता है ॥ १६ ॥ न गयामें पिंड देनेसे, न तीर्थोंसे, न बहुत यज्ञ करनेसे, द्विज लोग मुक्ति पाते हैं. विना एकादशीके जागरण किये मुक्ति नहीं होती ॥ १७ ॥ जो मनुष्य एकादशी आदि मेरे दिन जागरणमें पुष्पोंसे पूजा करते हैं वे एक २ पुष्प चढानेसे अश्वमेध यज्ञका फल पाते हैं ॥ १८ ॥ जो रात्रिको मेरे जागरणमें दीपदान करता है वह

यावद्दिनानि कुरुते जागरं मम सन्निधौ ॥ युगायुतानि तावंति वसते मम वेश्मनि ॥ १६ ॥ न गयापिंडदानेन न तीर्थैर्बहुभि-
र्मखैः ॥ पूर्वजा मुक्तिमायांति विनैकादशिजागरात् ॥ १७ ॥ यः कुर्याज्जागरे पूजा कुसुमैर्मम वासरे ॥ पुष्पे पुष्पेऽश्वमेधस्य
फलमाप्नोति मानवः ॥ १८ ॥ यः कुर्याद्दीपदानं च रात्रौ जागरणे मम ॥ निमिषे निमिषे पुत्र लभते गोयुतं फलम् ॥ १९ ॥
यो दद्याज्जागरे पुत्र हविष्यान्नसमुद्भवम् ॥ नैवेद्यं लभते पुण्यं शालिशैलसमुद्भवम् ॥ २० ॥ पकान्नानि च यो दद्यात्फलानि
विविधानि च ॥ जागरे मे चतुर्वक्त्र लभते गोशतं फलम् ॥ २१ ॥ कर्पूरेण च तांबूलं ददाति मम जागरे ॥ मद्भक्तो मत्प्रसा-
देन सप्तद्वीपाधिपो भवेत् ॥ २२ ॥ जागरे मम देवेश यः कुर्यात्पुष्पमंडपम् ॥ सपुष्पकविमानेन क्रीडते मम सद्मनि ॥ २३ ॥

एक २ निमिषके प्रकाशसे दश २ सहस्र गोदानका फल पाता है ॥ १९ ॥ हे पुत्र ! जो मेरे जागरणमें हविष्यान्नका नैवेद्य देता है वह धानके पहाड़ोंके दानके समान फल पाता है ॥ २० ॥ जो पकान्न और नानाप्रकारके फल मेरे जागरणमें देता है, वह सौ गोदानका फल पाता है ॥ २१ ॥ जो मेरा भक्त मेरे जागरणमें कर्पूरसे युक्त तांबूल देता है वह मेरे प्रसादसे सातों द्वीपोंका राजा होता है ॥ २१ ॥ हे देवेश ! जो मेरे जागरणमें फूलोंका

मंडप बनाता है वह मेरे स्थानमें जाकर पुष्पक विमानसे क्रीड़ा करता है ॥ २३ ॥ जो मेरे जागरणमें कपूर और गूगलकी धूप देता है वह अपने लाखों जन्मोंका पाप नाश करता है ॥ २४ ॥ जो मेरे जागरणमें मुझे दही दूध घृत जलसे स्नान कराता है वह इस लोकके भोगोंको पाकर अंते मुक्ति पाता है ॥ २५ ॥ जो दिव्य वस्त्र और विविध भांतिके फल देता है वह जितने फलादिं देता है उतनेही वर्षोंतक चिरकाल वह स्वर्गमें

मे जागरे तु यो धूपं सकर्पूरं सगुग्गुलम् ॥ ददाति दहते पापं जन्मलक्षसमुद्भवम् ॥ २४॥ स्नापयेज्जागरे यो मां दधिक्षीरघृतां-
बुकैः ॥ भोगानिह लभेत्सो वै अंते च परमां गतिम् ॥ २५ ॥ दिव्यांबराणि यो दद्यात्फलानि विविधानि च ॥ सचिरं वसते
स्वर्गे तंतुसंख्यासमानि वै ॥ २६ ॥ दद्यादाभरणं यो मे हेमजं रत्नसंभवम् ॥ सप्त कल्पानि वसते सोत्संगे मत्प्रियो मम ॥ २७ ॥
घृतेन दीपकं यो मे गव्येन च विशेषतः ॥ ज्वालयेज्जागरे रात्रौ निमिषे गोयुतं फलम् ॥ २८ ॥ जागरे मे चतुर्वक्र कर्पूरेण च
दीपकम् ॥ यो ज्वालयेत नीराजं कपिलादानजं फलम् ॥ २९ ॥ यः पुनः कुरुते दीपं गीतं नृत्यं च पूजनम् ॥ शतक्रतुसमं
पुण्यं व्रतैर्दानशतैरपि ॥ ३० ॥

वसता है ॥ २६ ॥ जो मुझे सोनेका रत्नजटित भूषण देता है वह मेरा प्रिय सातकल्पतक मेरे समीप वसता है ॥ २७ ॥ जो घृतसे विशेष करके गौके घृतसे दीपक जागरणकी रात्रिमें मेरेपास बालता है वह एक २ निमिषमें दश २ सहस्र गोदानका फल पाता है ॥ २८ ॥ हे ब्रह्मा ! जो जागरणमें कपूरके दीपकसे आरती करता है वह कपिला गौके दानका फल पाता है ॥ २९ ॥ जो दीपदान, गीत, नृत्य और पूजन करता है वह सैंकड़ों दान

और व्रतोंकी समान फल पाकर इंद्रकी समान फल पाता है ॥ ३० ॥ जो अपने आप निर्लज्ज होकर नाचता गाता है वह आधे २ निमिषमें करोडों यज्ञका फल पाता है ॥ ३१ ॥ जो मेरे जागरणमें गान और नृत्यको रोकता है वह साठ सहस्र वर्ष तक रौरवादि नरकोंमें पकाया जाता है ॥ ३२ ॥ मेरे जागरणमें नाचते हुए मनुष्यके निकट जो मनुष्य जाते हैं वह यमसे छूटकर मुक्ति पाते हैं ॥ ३३ ॥ जो मेरे

स्वयं यः कुरुते गीतं विलज्जो नृत्यते यदि ॥ स लभेन्निमिषार्धेन कोटियज्ञकृतं फलम् ॥ ३१ ॥ निवारयति यो गीतं नृत्यं जागरणे मम ॥ षष्टियुगसहस्राणि पच्यते रौरवादिषु ॥ ३२ ॥ नृत्यमानस्य मर्त्यस्य ये केचिन्निकटे गताः ॥ विमुक्ता धर्मराजेन मुक्ता यांति च मत्पदम् ॥ ३३ ॥ नृत्यमानस्य मर्त्यस्य उपहासं करोति यः ॥ जागरे यांति निरयं यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ ३४ ॥ जागरे मम यः कुर्याद्भक्त्या पुस्तकवाचनम् ॥ श्लोकसंख्यायुगान्येव स वसेन्मम सन्निधौ ॥ ३५ ॥ प्रदक्षिणाप्रदानेन यत्फलं कथितं बुधैः ॥ न तत्कोटिमखैः पुण्यं युगसंख्यैरवाप्यते ॥ ३६ ॥ दीपमाला ममाग्रे वै यः कुर्याज्जागरे सुत ॥ विमानकोटिसंयुक्त आकल्पं वसते दिवि ॥ ३७ ॥

जागरणमें नाचते हुए मनुष्यकी हँसी करता है वह जबतक चौदह इंद्र रहेंगे तबतक नरकमें वसता है ॥ ३४ ॥ जो मेरे जागरणमें भक्तिपूर्वक पुस्तक वांचता है वह जितने श्लोक वांचता है उतनेही युगोंतक मेरे समीप वसता है ॥ ३५ ॥ जो फल पंडितोंने मेरेको प्रदक्षिणा करनेका कहा है वह फल अनेक युगोंमें करोडों यज्ञोंसे भी नहीं प्राप्त हो सक्ता ॥ ३६ ॥ हे पुत्र ! जो मेरे जागरणमें पंक्ति बांधकर दीपकोंको जलाता है वह करोडों विमानोंसे संयुक्त

होकर कल्पभरतक स्वर्गमें वसता है ॥ ३७ ॥ जो जागरणमें मेरे बालकपनके चरित्रोंको पढता है वह मनुष्य सहस्रों करोड़युगोंतक श्वेतद्वीपमें वसता है ॥ ३८ ॥ इस लिये शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षोंमें जागरण करै. गीता, सहस्रनाम ॥ ३९ ॥ वेदोक्त पाठ और पुराणोंके पाठ करनेसे जो फल होता है वही फल एकादशीकी रात्रिमें जागरण करनेसे होता है. हे पुत्र ! मेरे जागरणमें जो गोदान करता है ॥ ४० ॥ वह सातद्वीपवाली पृथ्वीके दानका फल

मम बालचरित्राणि जागरे पठते हि यः ॥ युगकोटिसहस्राणि श्वेतद्वीपे वसेन्नरः ॥ ३८ ॥ तस्माज्जागरणं कार्यं पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ॥ यो गीतां पठते रात्रौ मम नामसहस्रकम् ॥ ३९ ॥ वेदोक्तानां पुराणाना जागरात्पुण्यमाप्नुयात् ॥ धेनुदानं तु यः कुर्याज्जागरे मम पुत्रक ॥ ४० ॥ लभते नात्र संदेहः सप्तद्वीपवतीफलम् ॥ सर्वेषामेव पुण्यानां महत्पुण्यं महीतले ॥ ४१ ॥ द्वादशीजागरं पुत्र प्रसिद्धं भुवनत्रये ॥ जागरं ये च कुर्वंति कर्मणा मनसा गिरा ॥ ४२ ॥ न तेषां पुनरावृत्तिर्मम लोकात्कथंचन ॥ प्रोत्साहयित्वा लोकान्यः कुरुते जागरं निशि ॥ ४३ ॥ प्राप्नोति चक्रवर्तित्वं सत्यं मे व्याहृतं सुत ॥ संमानिताः ककुत्स्थेन रात्रौ जागरकारिणः ॥ ४४ ॥

॥ ४२ ॥

पाता है इसमें संशय नहीं. हे पुत्र ! पृथ्वीपर सब पुण्योंसे अधिक पुण्य ॥ ४१ ॥ द्वादशीके जागरणसे होता है. यह तीनों भुवनोंमें प्रसिद्ध है. जे मनवचन कर्मसे जागरण करते हैं ॥ ४२ ॥ उनकी कभी मेरे लोकसे पुनरावृत्ति नहीं होती. जो लोगोंको उत्साह दिलाकर रात्रिमें जागरण करता है ॥ ४३ ॥ वह चक्रवर्ति राजा होता है. यह मैं सत्य कहता हूं. मेरी रात्रिमें जागरण करनेवालोंका ककुत्स्थने सन्मान किया ॥ ४४ ॥

और अपनी शक्तिके अनुसार जो दान देताहै वह दुर्लभ राज्यको प्राप्त होताहै. जो गाने बजाने नाचनेवाले और ब्राह्मण ॥ ४५ ॥ तथा नाचनेवाली स्त्रियां मेरे जागरणमें आती हैं वे सब मेरे सनातन लोकको जाते हैं. दुष्टयोनिमें प्राप्त मनुष्योंने भी मेरा जागरण करके ॥ ४६ ॥ इच्छापूर्वक राज्य पाया, और हे मुनिसत्तम ! निष्काम श्वपचादिकोंने भी जागरणसे मुक्ति पाई ॥ ४७ ॥ मेरे जागरणमें जातिविवेक नहीं है. कलियुगमें न ध्यान

स्वशक्त्या चैव दानेन प्राप्तं राज्यं सुदुर्लभम् ॥ ये केचिद्गायका विप्रा वाद्यका नर्तकाश्च ये ॥४५॥ नर्तकीसहिता यांति मम लोके स
नातने ॥ दुर्योनिषु गतैः सर्वैः कृत्वा जागरणं मम ॥ ४६ ॥ संप्राप्ता पृथिवीशत्वं कामुकैर्मुनिसत्तम ॥ निष्कामा मुक्तिमापन्नाः श्वप-
चाद्याश्च जागरात् ॥४७॥ विवेको नास्ति वर्णानां मम जागरकारिणाम् ॥ न कलौ पावनं ध्यानं न कलौ जाह्नवीजलम् ॥ ४८ ॥
न कलौ पावनं जाप्यं मुक्त्वैकं जागरं मम ॥ द्वादशीदिवसे प्राप्ते ये कुर्वंति हि जागरम् ॥४९॥ ते धन्यास्ते कृतार्था वै कलिका-
लेन संशयः ॥ न भूयान्मानुषे लोके द्वादशीविमुखो नरः ॥ ५० ॥ अतीतान्वागतान्वापि पातयेन्नरके हि सः ॥ वरमेको गुणै-
र्युक्तः किं जातैर्बहुभिः सुतैः ॥५१॥ द्वादशीजागरात्सर्वांस्तारयेद्यो हि पूर्वजान् ॥ माहात्म्यं पठते भक्त्या मयोक्तं जागरोद्भवम् ॥५२॥

पवित्र होता है, न गंगाजल पवित्र है ॥ ४८ ॥ और जप आदिसे केवल जागरणही कलियुगमें पवित्र है कलियुगमें द्वादशीके दिन जो मेरा जागरण करते हैं ॥ ४९ ॥ वे धन्य और कृतार्थ हैं. इसमें संशय नहीं है. पृथ्वीपर द्वादशीविमुख मनुष्य न होवे ॥ ५० ॥ द्वादशीविमुख मनुष्य अपने पिछले और अगले जीवोंको नरकमें डालता है. गुणी पुत्र एकही श्रेष्ठ है. निर्गुणी बहुत पुत्रोंके होनेसे क्या लाभ है ॥ ५१ ॥ जो द्वादशीके दिन जागरणकी कर-

॥ ४३ ॥ ताहै वह संपूर्ण पहिले पितरोंका उद्धार करता है. जो मेरे कहे हुए द्वादशीके जागरणके माहात्म्यको भक्ति पूर्वक पढता है ॥ ५२ ॥ वह सौ कुलोंका उद्धार करता है. हे पुत्र ! गमन करने अयोग्य स्त्रीमें गमन करनेसे और अभक्ष्यका भक्षण करनेसे पाप होता है ॥ ५३ ॥ वह पाप और विनाजाने किया हुआ तथा जानकर किया हुआ पाप ॥ ५४ ॥ पहिले जन्मोंमें किये हुए और इस जन्ममें किये हुए पाप ये सब पाप मेरेदिन जागरण करनेसे नष्ट होते हैं और अ० १३

द्वादशीसंभवं पुत्र कुलानां तारयेच्छतम् ॥ अगम्यागमने पापमभक्षस्यापि भक्षणे ॥ ५३ ॥ पापं विलयमायाति कृते जाग-
रणे सुत ॥ अज्ञानाद्यत्कृतं पापं ज्ञात्वा यत्पातकं कृतम् ॥ ५४ ॥ पूर्वजन्मार्जितं पापमिह जन्मनि यत्कृतम् ॥ सिद्ध्यंति
सर्वकार्याणि मनसा चिंतितान्यपि ॥५५॥ द्वादश्यां वै चतुर्वक्त्र रात्रौ जागरणे कृते॥द्वादशीजागरेणैव मुक्तिं गच्छंति मानवाः
॥५६॥ न तत्पुण्यं कुरुक्षेत्रे प्रयागे वसतां कलौ॥ माहात्म्यं वसतां पुंसां यत्फलं द्वादशीषु च ॥५७॥ नाश्वमेधसहस्रैस्तु तीर्थ-
कोटयवगाहनात् ॥ तत्फलं प्राप्यते पुत्र द्वादशीजागरे कृते ॥ ५८ ॥ पठेद्वा शृणुयाद्वापि माहात्म्यं द्वादशीभवम् ॥ सर्वपाप-
विशुद्धात्मा स लभेच्छाश्वतीं गतिम् ॥ ५९ ॥ ॥ ४३ ॥

सब मनोवांछित कार्य सफल होते हैं ॥ ५५ ॥ हे ब्रह्मदेव ! द्वादशीकी रात्रिको जागरण करनेसे मनुष्य मोक्ष पाते हैं ॥ ५६ ॥ जो फल द्वादशीके जागरणसें होता है वह फल न कुरुक्षेत्रके वसनेवालोंको होता है और न प्रयागके वसनेवालोंको होता है ॥ ५७ ॥ हे पुत्र ! न वह फल सहस्रों अश्वमेधोंसे और न करोडों तीर्थमें स्नान करनेसे होता है, जो द्वादशीके जागरणसे होता है ॥ ५८ ॥ जो द्वादशीके माहात्म्यको पढता वा सुनता है वह सब

पापोंसे शुद्ध होकर परम गति पाता है ॥ ५९ ॥ और उसके सारे दुष्ट ग्रह भी सदा सौम्य रहते हैं. और न उसको संतानका वियोग होता है जिसका कारण द्वादशीमाहात्म्य है ॥ ६० ॥ नित्य मेरे गुणोंमें जिसकी रुचि है उसे कभी विपत्ति नहीं होती, रणमें और राजकुलमें वह सदा विजय पाता है ॥ ६१ ॥ जिसकी बुद्धि नित्य धर्मपर है जिसकी मुझमें निर्मल भक्ति है. उस मनुष्यको द्वादशीमें भक्ति होनेसे पातक लिप्त नहीं होता ॥ ६२ ॥ मेरा

सर्वे दुष्टाः समस्ताश्च सौम्यास्तस्य सदा ग्रहाः ॥ संततेर्न वियोगस्तु द्वादशी यस्य कारणम् ॥ ६० ॥ मम कीर्तिरुचिर्नित्यं न विपद्येत कर्हिचित् ॥ रणे राजकुले चैव सर्वदा विजयी भवेत् ॥ ६१ ॥ धर्मोपरि मतिर्नित्यं भक्तिर्मयि सुनिर्मला ॥ पातकं नैव लिप्येत द्वादशीभक्तितो नरम् ॥६२॥ प्रेतत्वं नैव तस्यास्ति कृते जागरणे मम ॥ एकादश्या विहीनस्य परलोकगतिर्न हि ॥६३॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कलौ कार्यं हि तद्दिनम् ॥ ६४ ॥ इतिश्रीस्कंदपुराणे मार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ ततः प्रभाते द्वादश्यां कार्यो मत्स्योत्सवो बुधैः ॥ मार्गशीर्षे शुक्लपक्षे यथाविध्युपचारतः ॥१॥ अथ मार्गशिरे मासे दशम्यां नियतात्मवान् ॥ कृत्वा देवार्चनं धीमानग्निकार्यं यथाविधि ॥ २ ॥

जागरण करनेसे प्रेतता नहीं होती. एकादशीहीनको परलोकमें गति नहीं है ॥ ६३ ॥ इसकारण सब प्रयत्नकरके कलियुगमें एकादशी करनी चाहिये ॥ ६४ ॥ इतिश्रीस्कंदपुराणे मार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे भाषायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ श्रीभगवान बोले ॥ मार्गशिर शुक्ला-द्वादशीको प्रातःसमय पंडितोंको विधिपूर्वक मत्स्यावतारका उत्साह करना चाहिये ॥ १ ॥ मार्गशिर शुक्ला दशमीको जितेंद्रियवान् पूर्वक

बुद्धिमान् देवार्चन कर विधिपूर्वक अग्निकार्य करै ॥ २ ॥ शुद्ध वस्त्र पहिने, प्रसन्न चित्त, संस्कार किये हुए, हव्यान्नको पकाकर पंचपदपर जाकर चरण धोकर ॥ ३ ॥ आठ अंगुल प्रमाणकी दूधवाले वृक्षकी दातौन करै. फिर यत्नपूर्वक आचमन करके ॥ ४ ॥ सब आकाशोंको अर्थात् आकाशतरफ देख, मुझ गदाधर जिसके हाथमें शंखचक्रगदा हैं, किरीटधारी, पीतांबरधारी, कमलसदृश प्रसन्नवदन, संपूर्ण लक्षणोंसे संपन्न विष्णुभगवानका ध्यान कर,

शुचिवासाः प्रसन्नात्मा हव्यमन्नं सुसंस्कृतम् ॥ पक्त्वा पंचपदे गत्वा पुनः शौचं तु पादयोः ॥ ३ ॥ कृत्वाष्टांगुलमानं तु क्षीरवृक्ष-
समुद्भवम् ॥ भक्षयेद्दंतकाष्ठं तु ततश्चाचम्य यत्नतः ॥४॥ दृष्ट्वाकाशानि सर्वाणि ध्यात्वा वै मां गदाधरम् ॥ शंखचक्रगदापाणिं
किरीटं पीतवाससम् ॥ ५ ॥ प्रसन्नवदनांभोजं सर्वलक्षणलक्षितम् ॥ ध्यात्वा पुनर्जलं हस्ते गृहीत्वा भानुमध्यगम् ॥ ६ ॥
ध्यात्वार्घ्यं दापयेत्तत्र करतोयेन मानवः ॥ एवमुच्चारयेद्वाचं तस्मिन्काले चतुर्मुख ॥७॥ एकादश्यां निराहारः स्थित्वाहनि परे
ह्यहम् ॥ भोक्ष्यामि पुंडरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ॥८॥ एवमुक्त्वा ततो रात्रौ मम मूर्तेश्च सन्निधौ ॥ जपेन्नारायणायेति स्वयं
तत्र विधानतः ॥ ९ ॥ ततः प्रभाते विमलां नदीं गत्वा समुद्रगाम् ॥ इतरां वा तडागं वा गृहे वा नियतात्मवान् ॥ १० ॥

मध्यान्ह समय हाथमें जल ले, ध्यान कर, अर्घ्य देवे. हे ब्रह्मा ! उससमय यह कहै ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ मैं एकादशीको निराहार रहकर दूसरे दिन भोजन करूंगा. हे पुंडरीकाक्ष ! हे अच्युत ! मेरे शरण (रक्षक) हो ॥ ८ ॥ यह कहकर फिर रात्रिमें मेरी मूर्तिके समीप "ओं नमो नारायणाय" यह मंत्र विधिपूर्वक जपै ॥ ९ ॥ फिर प्रातःसमय निर्मल समुद्रगामिनी तथा दूसरी नदी वा तडागपर जाकर वा घरहीमेंसे शुद्ध मृत्तिका

लाकर इसी मंत्रसे मुझ देवदेवेश्वरको प्रणाम करै उसी क्षवत वह मनुष्य शुद्ध होता है ॥ १० ॥ ११ ॥ हे देव ! सदा प्राणियोंका धारण और पोषण आपहीसे है. हे सुव्रत ! उसी सत्यसे मेरे सारे पापोंको नष्ट करो ॥ १२ ॥ ब्रह्मांडके उदरमें जितने तीर्थ हैं इन सबनकों देवतोंने हाथोंसे स्पर्श किया है इसकारण आपकी स्पर्श की हुई और उठाई हुई इस मृत्तिकाको मैं ग्रहण करता हूं ॥ १३ ॥ तुझमें नित्य संपूर्ण रस देवता निवास करते हैं, इसकारण हे वरुण ! इस

आनीय मृत्तिकां शुद्धां मंत्रेणानेन मानवः ॥ वंदयेद्देवदेवेशं तदा शुद्धो भवेन्नरः ॥ ११ ॥ धारणं पोषणं त्वत्तो भूतानां देव सर्वदा ॥ तेन सत्येन मे पापं यावन्मोचय सुव्रत ॥१२॥ ब्रह्मांडोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि दैवतैः ॥ तेनेमां मृत्तिकां स्पृष्टामालभामि त्वयोद्धृताम् ॥ १३ ॥ त्वयि नित्यं रसाः सर्वे स्थिता वरुण सर्वदा ॥ तेनेमां मृत्तिकां प्लाव्य पूतां कुरुष्व मा चिरम् ॥ १४ ॥ एवं मृदं तथा तोयं प्रसाद्यात्मानमालभेत् ॥ त्रिःकृत्वा शेषमृदया पिंडमालिप्य वै जले ॥ १५ ॥ तस्मिन्नरः सदा सम्यक् नक्रकच्छपचारतः ॥ स्नात्वा चावश्यकं कृत्वा पुनर्मम गृहं व्रजेत् ॥ १६ ॥ तत्राराध्य महायोगिन्देवं नारायणं हरिम् ॥ केशवाय नमः पादौ कटिं दामोदराय च ॥ १७ ॥

मृत्तिकाको गीली करके शीघ्र पवित्र कीजिये. ॥ १४ ॥ इसप्रकार मृत्तिका और जलको प्रसन्न कर अपने लिये ले, उसमेंसे तीन पिंड बनाकर पृथ्वीपर रख दे और शेष मृत्तिकाको अपने शरीरमें लेपन करै ॥ १५ ॥ फिर उस जलमें नक्रकच्छपसे बच कर स्नान करै. फिर आवश्यक कर्म कर विष्णुमंदिरमें जावे ॥ १६ ॥ और वहां श्रीनारायण विष्णु भगवान्की आराधना करै. हे महायोगिन् ! “ ओं नमः केशवाय ” इस मंत्रसे

चरणोंका "ॐ नमो दामोदराय" इस मंत्रसे कटिका ॥ १७ ॥ "ॐ नमो नृसिंहाय" इससे दोनों जंघाओंका "ॐ नमः श्रीवत्सधारिणे" इससे हृदयका "ॐ नमः कौस्तुभनाभाय" इससे कंठका "ॐ नम श्रीपतये" इससे वक्षःस्थलका ॥ १८ ॥ "ॐ नमस्त्रैलोक्यविजयाय" इससे भुजाका "ॐ नमः सर्वात्मने" इससे शिरका "ॐ नमो रथांगधारिणे" और "ॐ नमः कराय" इससे मुखका ॥ १९ ॥ "ॐ नमो गंभीराय" इससे गदाका

जानुयुग्मं नृसिंहाय उरः श्रीवत्सधारिणे ॥ कंठे कौस्तुभनाभाय वक्षः श्रीपतये तथा ॥ १८ ॥ त्रैलोक्यविजयायेति बाहुं
सर्वात्मने शिरः ॥ रथांगधारिणे वक्रं करायेति च वारिजम् ॥ १९ ॥ गंभीरायेति च गदामंभोजं शांतमूर्तये ॥ एवमभ्यर्च्य
देवेशं देवं नारायणं प्रभुम् ॥ २० ॥ पुनस्तस्याग्रतः कुंभांश्चतुरः स्थापयेद्बुधः ॥ जलपूर्णान् समाल्यांश्च सितचंदनलेपितान्
॥ २१ ॥ चूतपल्लवसंयुक्तान् सितवस्त्रावगुंठितान् ॥ छादितांस्ताम्रपात्रैश्च तिलपूर्णैः सकांचनैः ॥ २२ ॥ चत्वारस्तु समुद्राश्च
कलशाः संप्रकीर्तिताः ॥ तेषां मध्ये शुभं पीठं स्थापयेद्वस्त्रगर्भितम् ॥ २३ ॥ तस्मिन् सुवर्णं रौप्यं वा ताम्रं वा दारवं तथा ॥
अलाभे सर्वपात्राणां पालाशं पात्रमिष्यते ॥ २४ ॥

"ॐ नमः शांतमूर्तये" इससे कमलका पूजन करै. इसप्रकार देवदेव प्रभु नारायणका अर्चन करै ॥ २० ॥ उनके आगे चार घडे स्थापन करै. जो जलसे पूर्ण, मालायुक्त, श्वेतचंदनसे लिप्त, ॥ २१ ॥ आम्रके पत्रोंसे संयुक्त, श्वेतवस्त्रोंसे आच्छादित, तिलसे भरे हुए, सुवर्ण वा ताम्रपात्रसे संयुक्त करै ॥ २२ ॥ ये चारों कलश चार समुद्र माने गये हैं. उनके बीचमें वस्त्रोंसे संयुक्त सिंहासन स्थापन करै ॥ २३ ॥ उसमें सुवर्ण, चांदी, ताम्र वा काष्ठका पात्र

रक्खै इनके न मिलनेपर ढाकका पात्र रक्खै ॥ २४ ॥ उसमें जल भरकर उस जलमें देवदेवांगसंयुक्त श्रुतिस्मृतिसे विभूषित सुवर्णके मत्स्यरूप विष्णु भगवानको स्थापन कर नानाप्रकारके भक्ष्य भोज्य फल पुष्प गंध धूप वस्त्रादिसे विधिपूर्वक पूजन करै. हे केशव ! जिसप्रकार मत्स्यरूप धर आपने पातालमें गये हुए वेदोंका निकाला ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ वैसेही मेरा उद्धार कीजिये यह कह उनके आगे जागरण करै ॥ २८ ॥ फिर

तोयपूर्णं च तत्कृत्वा तस्मिन्पात्रे ततो न्यसेत् ॥ सौवर्णं मत्स्यरूपं च कृत्वा देवं जनार्दनम् ॥ २५ ॥ देवदेवांगसंयुक्तं श्रुतिस्मृतिविभूषितम् ॥ तत्रानेकविधैर्भक्ष्यैः फलैः पुष्पैश्च शोभितम् ॥ २६ ॥ गंधैर्धूपैश्च वस्त्रैश्च अर्चयित्वा यथाविधि ॥ रसातलगता वेदा यथा देव त्वयोद्धृताः ॥ २७ ॥ मत्स्यरूपेण तद्वन्मां भवादुद्धर केशव ॥ एवमुच्चार्य तस्याग्रे जागरं तत्र कारयेत् ॥ २८ ॥ यथाविभवसारेण प्रभाते विमले तथा ॥ चतुर्णां ब्राह्मणानां च चतुरो दापयेद्घटान् ॥ २९ ॥ पूर्वं च बह्वृचे दद्याच्छांदोग्ये दक्षिणं तथा ॥ यजुःशाखान्विते दद्यात्पश्चिमं घटमुत्तमम् ॥ ३० ॥ उत्तरं कामतो दद्यादेष एव विधिः स्मृतः ॥ ऋग्वेदः प्रीयतां पूर्वे सामवेदस्तु दक्षिणे ॥ ३१ ॥

प्रातःकाल होनेपर वे चारों घड़े चार ब्राह्मणोंको देवे ॥ २९ ॥ पूर्वकीओरका घड़ा ऋग्वेदीको, दक्षिणका छांदोग्यज्ञाताको, पश्चिमका यजुर्वेदीको ॥ ३० ॥ और उत्तरका इच्छापूर्वक ब्राह्मणको देवे यह विधि है. पूर्वके घटसे ऋग्वेद, दक्षिणके घटसे सामवेद, पश्चिमके घटसे

यजुर्वेद और उत्तरके घटसे अथर्ववेद, प्रसन्न हो इसप्रकार क्रमपूर्वक कहै ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ और सुवर्णकी मत्स्यरूपकी प्रतिमा आचार्यको दे और विधि-
पूर्वक गंधधूपवस्त्रादिसे पूजन करै ॥ ३३ जो इस रहस्यसहित विधानको मंत्रपूर्वक करता है और विधिपूर्वक दान देता है उसे करोड़गुणा फल होता है ॥ ३४ ॥
गुरुको देनेकी इच्छा करके जो फिर मोहसे नहीं देता वह पुरुपाधम करोड़ों जन्म नरकमें पड़ता है ॥ ३५ ॥ जो विधिका देनेवाला है उसे पंडितोंने

यजुर्वेदः पश्चिमतो ह्यथर्वश्चोत्तरेण तु ॥ अनेन क्रमयोगेन प्रीयतामिति वाचयेत् ॥ ३२ ॥ मत्स्यरूपं तु सौवर्णं आचार्याय
निवेदयेत् ॥ गंधधूपादिवस्त्रैस्तु संपूज्य विधिवत्क्रमात् ॥ ३३ ॥ यस्त्विमं सरहस्यं च मंत्रेणैवोपपादयेत् ॥ विधानं
विधिवद्दत्त्वा दाता कोटिगुणोत्तरम् ॥ ३४ ॥ प्रतिपद्य गुरुं यस्तु मोहाद्विप्रतिपद्यते ॥ स जन्मकोटि नरके पच्यते पुरुषाधमः
॥ ३५ ॥ विधानस्य प्रदाता यो गुरुरित्युच्यते बुधैः ॥ एवं दत्त्वा विधानेन द्वादश्यां मां समर्चयेत् ॥ ३६ ॥ विप्राणां भोजनं
दद्याद्यथाशक्त्या च दक्षिणाम् ॥ भूरिणा परमान्नेन ततः पश्चात्स्वयं नरः ॥ ३७ ॥ भुंजीत सहितो विप्रैर्वाग्यतः संयतेंद्रियः ॥
अनेन विधिना यस्तु कुर्यान्मत्स्योत्सवं नरः ॥ ३८ ॥

गुरु कहा है. इसप्रकार विधिपूर्वक दान दे द्वादशीको मेरा पूजन करै ॥ ३६ ॥ यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन और दक्षिणा दे बहुतसे परमान्न
(खीर) से ब्राह्मणोंको जिमावे ॥ ३७ ॥ फिर आप जितेंद्रियतापूर्वक मौनी हो ब्राह्मणों सहित भोजन करै. इस विधिसे जो मनुष्य मत्स्योत्सव

करता है ॥ ३८ ॥ हे सत्येमें श्रेष्ठ ! उसका फल सुनो. जो सहस्रोंकें सहस्रों मुख हो ॥ ३९ ॥ और उसकी आयु ब्रह्माके तुल्य ही वह इस धर्मके फल कहनेको समर्थ होता है ॥ ४० ॥ जो इस द्वादशीकल्पको भक्तिपूर्वक सुनता है अथवा सुनाता है वह सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ४१ ॥ इतिश्रीस्कंदपुराणे मार्गशिरमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसंवादे मत्स्योत्सवकथनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीभगवान बोले ॥ हे प्रश्नजाननेवालोंमें श्रेष्ठ !

तस्य पुण्यफलं चाग्रे शृणु सत्यवतां वर ॥ यदि वक्त्रसहस्राणां सहस्राणि भवंति हि ॥ ३९ ॥ आयुश्च ब्रह्मणा तुल्यं लभेद्यदि महाव्रत ॥ तदा वै ह्यस्य धर्मस्य फलं कथयितुं भवेत् ॥ ४० ॥ य इमं श्रावयेद्भक्त्या द्वादशीकल्पमुत्तमम् ॥ शृणोति वा स पापैस्तु सर्वैरेव विमुच्यते ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे मार्गशीर्षमाहात्म्ये विष्णुचतुर्मुखसंवादे मत्स्योत्सवकथनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ ये त्वया वै कृताः प्रश्नाः पूर्वं प्रश्नविदां वर ॥ तान्वर्णयिष्ये क्रमशो निशामय सुनिश्चितम् ॥ १ ॥ सहोमासे च देवो वै कीर्तियुक्तो हि केशवः ॥ तस्य पूजा प्रकर्तव्या यथा पूर्वं प्रभाषितम् ॥ २ ॥ ब्राह्मणं केशवं स्मृत्वा तत्पत्नीं कीर्तिमेव च ॥ दंपती विधिवत्पूज्यौ वस्त्राभरणधेनुभिः ॥ ३ ॥

तुमने जो पहिले प्रश्न किये उनको मैं क्रमपूर्वक वर्णन करता हूं सुनिये ॥ १ ॥ मार्गशिरमें कीर्तियुक्त विष्णु पूज्य हैं. उसकी पूजा पूर्वोक्त विधिसे करै ॥ २ ॥ ब्राह्मणको विष्णु और उसकी स्त्रीको कीर्ति जाने. उन दोनों स्त्रीपुरुषोंको वस्त्रआभरण और गौआदिकोंसे विधिपूर्वक पूजन

करै ॥ ३ ॥ हे पुत्र ! जिसने दंपतीका पूजन किया उसने निःसंदेह मेरा पूजन किया, अतएव मेरी प्रसन्नताके लिये उन स्त्रीपुरुषोंका अवश्य पूजन करै ॥ ४ ॥ मेरी प्रसन्नतार्थ नानाप्रकारका दान करै और गोदान, भूमिदान, स्वर्णदान, वस्त्रदान, शय्यादान, भूषणदान, स्थानदान, मेरे संतोषके निमित्त विशेषकरके करै ॥ ५ ॥ ६ ॥ सब दानोंमें पृथ्वी, गौ और विद्या यह तीन दान विशेष हैं ॥ ७ ॥ जो ये तीनों दान करता है उसपर मेरी

दंपती पूजितौ वत्स पूजितोहं न संशयः ॥ तस्मादवश्यं संपूज्यौ दंपती मम तुष्टिदौ ॥ ४ ॥ दानं च विविधं कार्यं मम तुष्टिकरं परम् ॥ गोदानं भूमिदानं च स्वर्णदानं विशेषतः ॥ ५ ॥ वस्त्रदानं तथा शय्या तथालंकरणानि च ॥ सद्मदानं प्रकर्तव्यं मम संतोषकारकम् ॥ ६ ॥ सर्वेषामेव दानानां विशेषं च त्रिकं स्मृतम् ॥ वसुंधरा तथा धेनुर्विद्यादानं तथैव च ॥ ७ ॥ दत्ते दानत्रिके वत्स भवेत्प्रीतिर्ममातुला ॥ तस्मान्नरैस्तु कर्तव्यं सहोमासे त्रिकं शुभम् ॥ ८ ॥ स्नानस्य च विधिः सम्यक् पुरैवोक्तो मयानघ ॥ पूजास्नानं च दानं च विधिरेष न संशयः ॥ ९ ॥ मार्गशीर्षं समग्रं तु एकभक्तेन यः क्षिपेत् ॥ भोजयेद्यो द्विजान्भक्त्या स मुच्येद्व्याधिकिल्बिषैः ॥ १० ॥

बड़ी प्रीति होती है. अतएव मार्गशिरमें मनुष्योंको ये तीनों दान करने चाहिये ॥ ८ ॥ हे निष्पाप ! स्नानकी विधि मैं सम्यक् प्रकारसे पहिले कहचुका. पूजा स्नान और दानकी यह विधि है इसमें संशय नहीं ॥ ९ ॥ जो सब मार्गशीर्षमास एकभक्तव्रत करता है और जो ब्राह्मणोंको

भक्तिपूर्वक भोजन कराता है उसके सब रोग और पातक नष्ट हो जाते हैं ॥ १० ॥ और वह खेतीमें भाग्यवान् और धनवान् होता है बहुत कहनेसे क्या काम, मेरी गुप्त वार्ता सुन. ॥ ११ ॥ हे मानके देनेवाले ! अग्नि और ब्राह्मणही मेरे मुख हैं. जैसा ब्राह्मण नामक मुख श्रेष्ठ है वैसा अग्नि श्रेष्ठ नहीं ॥ ॥ १२ ॥ हे पुत्र ! ब्राह्मणके मुखमें होम किया हुआ करोडोगुणा होता है. अग्नि ब्राह्मणके आधीन है और ब्राह्मण स्वतंत्र हैं ॥ १३ ॥ हे पुत्र !

कृषिभागी बहुधनो बहुधान्यश्च जायते ॥ किमत्र बहुनोक्तेन शृणु गुह्यं परं मम ॥११॥ हुतभुग्ब्राह्मणश्चैव वदनं मम मानद ॥ ब्राह्मणाख्यं मुखं श्रेष्ठं न तथा हव्यवाहनः ॥ १२ ॥ ब्राह्मणाख्ये मुखे पुत्र हुतं कोटिगुणं भवेत् ॥ अग्न्याख्यं ब्राह्मणाधीनं स्वतंत्रा ब्राह्मणाः किल ॥ १३ ॥ सशर्करं सर्पियुतं पायसं शशिसन्निभम् ॥ होतव्यं ब्राह्मणमुखे मम तुष्टिकरं सुत ॥ १४ ॥ शुभमंडलमोदककोकरसं सुत फेनिकया घृतपूरयुतम् ॥ यज विप्रमुखे मम तुष्टिकरं यदि चेच्छसि दारसुतादिसुखम् ॥ १५ ॥ कुमुदेन समप्रभ सौरभदं शुभभक्तयुतं त्वथ मुद्गयुतम् ॥ सुरभीकृतपुष्कलसर्पिसमं कुरु विप्रमुखे हवनं हि सहे ॥ १६ ॥

शर्करासे और घृतसे युक्त और चंद्रमाकी समान प्रकाशमान पायस (क्षीर) मेरी प्रसन्नतार्थ ब्राह्मणके मुखमें होम कर ॥ १४ ॥ हे पुत्र ! जो स्त्रीपुत्रादिका सुख चाहै तो सुंदर मंडलयुक्त लड्डू, कोकरस (पाकविशेष), फेणियोंसे और घृतपूरसे युक्त मेरी प्रसन्नतार्थ ब्राह्मणके मुखमें होम करै ॥ १५ ॥ मार्गशिरमें कुमुदकी समान प्रकाशमान, सुगंधित मूंगयुक्त, और गौके बहुत घृतसे संयुक्त, सुंदर भात ब्राह्मणके

मुखमें होम करे ॥ १६ ॥ दुग्ध, घृत, खारीक, चारफल, मिश्री, नारियल, कपूर, आदिसे संयुक्त अत्युज्ज्वल पाक और प्रकाशमान मनोज्ञ प्रिय व्यंजन मार्गशिरमें ब्राह्मणोंके लिये करे ॥ १७ ॥ १८ ॥ प्रिय शिखरण और उन ब्राह्मणोंको प्रिय अनेक पदार्थ बनाकर परम श्रद्धायुक्त उन्होंको जिमावे ॥ १९ ॥ रसोंके स्वादसे जिसप्रकार ब्राह्मण भोजन करते हैं, उसीप्रकार पृथ्वीपर दुर्लभ मेरी अति प्रीति होती है ॥ २० ॥ हे पुत्र!

पयसा सह सर्पिषि च क्वथितं बहुखारिकचारफलैः सितया ॥ सह कर्पूरनारिफलेन समं युतसीकरकं सुत शुभ्रकरम् ॥ १७ ॥ व्यंजनानि च शुभ्राणि मनोज्ञानि प्रियाणि च ॥ कर्त्तव्यानि सहोमासे ब्राह्मणार्थे चतुर्मुख ॥ १८ ॥ प्रिया शिखरिणी कार्या चान्यत्तेषा प्रियं च यत् ॥ कृत्वैवं भोजयेद्विप्रान् श्रद्धया परया सुत ॥१९॥ रसस्वादनपूर्वं हि भुंजते वै यथायथा॥ तथातथा मम प्रीतिर्जायते भुवि दुर्लभा ॥२०॥ तस्माचात तथा कार्यं यथा तुष्यंति ब्राह्मणाः ॥ तुष्टैस्तैश्चाप्यहं तुष्टो भवामीह न संशयः ॥ २१ ॥ श्रद्धस्व त्वं चतुर्वक्त्र न ते मिथ्या ब्रवीम्यहम् ॥ एतद्गुह्यं मया प्रोक्तं श्रेयोर्थं तव मानद ॥ २२ ॥ आक्रोशयंति यदि ते अथवा प्रहरंति चेत् ॥ तथापि ते नमस्या वै मम प्रीत्या हि मानद ॥ २३ ॥

इसकारण ऐसा करै जिससे ब्राह्मण प्रसन्न हों. उनके प्रसन्न होनेसे मैं निस्संदेह प्रसन्न होता हूं ॥ २१ ॥ हे ब्रह्मा! तू श्रद्धा कर, मैं मिथ्या नहीं कहता, हे मानद! तेरे कल्याणके लिये मैंने यह गुप्त वार्ता तुझसे कही है ॥ २२ ॥ हे मानद! यदि वे क्रोध करैं वा मारैं तो भी मेरी प्रीतिके लिये वे ब्राह्मण नमस्कार

करनेयोग्य हैं ॥ २३ ॥ हे पुत्र ! नित्य ऐसा करै और मार्गशिरमें तो विशेषकरके करै. हे ब्रह्मा ! जो तुमने भोजन क्या करना चाहिये ऐसा पूछा था, सो कहता हूं सुनो ॥ २४ ॥ मेरे भक्तिमें तत्पर जनोंनें पापियोंकोभी पवित्र करनेवाला और मुक्ति देनेवाला मेरा उच्छिष्ट भोजन करना ॥ २५ ॥ जो प्रति दिन मेरेको भोग लगाकर खाता है वह सीथ २ पर सैंकड़ों चांद्रायणका फल पाता है ॥ २६ ॥ अवशिष्ट

एवं कार्यं सदा पुत्र मार्गशीर्षे विशेषतः ॥ यदुक्तं भवता ब्रह्मन्भोक्तव्यं किं शृणुष्व तत् ॥ २४ ॥ भोक्तव्यं मम चोच्छिष्टं मम भक्तिपरायणैः ॥ पवित्रकरणं पुत्र पापिनामपि मुक्तिदम् ॥ २५ ॥ ममाशनस्य शेषं च यो भुनक्ति दिने दिने ॥ सिक्थेसिक्थे भवेत्पुण्यं चांद्रायणशतोद्भवम् ॥ २६ ॥ अवशिष्टं तथोच्छिष्टं भक्तानां भोजनद्वयम् ॥ नान्यद्धै भोजनं तेषां भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ २७ ॥ अनर्पयित्वा यो भुंक्ते अन्नपानादिकं च यत् ॥ श्वानविष्ठासमं चान्नं पानं च मदिरासमम् ॥ २८ ॥ तस्मान्मामर्पयेत्पुत्र अन्नपानादि चौषधम् ॥ भक्षयेत्परया भक्त्या अशुचेःशुचिकारकम् ॥ २९ ॥

(भोग लगाकर बचा हुआ) और उच्छिष्ट (जो कुछ भोजन करै उसे कृष्णार्पणकरके उसी अर्पण किये हुए भोजनको खावै) यही दोनों भक्तोंके लिये भोजन हैं तीसरा कोई भोजन नहीं. इनकेसिवाय कोई भोजन करे तो चांद्रायण व्रत करै ॥ २७ ॥ विनाकृष्णार्पण किये जो अन्नपानादि करते हैं सो अन्न श्वानके विष्ठाके समान और पान मदिरातुल्य होजाता है ॥ २८ ॥ हे पुत्र ! इसलिये अन्नपान औषधादि मेरे अर्पण कर भक्षण करै तो वह

अपवित्रको पवित्र करता है ॥ २९ ॥ तीर्थयज्ञादि तो कलियुगके दोषोंको नष्ट करते हैं. और मेरा उच्छिष्ट पापियोंको भी मुक्ति देता है ॥ ३० ॥ और अन्य देवतोंका उच्छिष्ट भक्षण न करै और अभक्तोंका पक्वान्न खाकर नरकमें जाता है ॥ ३१ ॥ जो कहनी चाहिये सो कह सुनाया, अभी मैं तुम्हारी प्रीतिकेलिये कहता हूं वह बड़ी गुप्त वार्ता है. ॥ ३२ ॥ और मार्गशिरमें मेरा नाम विशेषकरके कहना चाहिये, मेरी प्रीतिके अर्थ कृष्णकृष्ण इसीप्रकार

तीर्थयज्ञादिकफलं कलिदोषविनाशनम् ॥ ममोच्छिष्टं सुगतिदमपि दुष्कृतकर्मणाम् ॥ ३० ॥ अन्येषां देवतानां च न गृह्णीयाच्च भक्षितम् ॥ अभक्तानां च पक्वान्नं भुक्त्वा च नरकं व्रजेत् ॥ ३१ ॥ वक्तव्यमेव यत्प्रोक्तं तच्छृणुष्व समाहितः ॥ कथयिष्ये तव प्रीत्या अपि गुह्यतरं मम॥३२॥ मम नाम प्रवक्तव्यं सहे चैव विशेषतः॥कृष्णकृष्णेति वक्तव्यं मम प्रीतिकरं परम् ॥३३॥ प्रतिज्ञैषा च मे पुत्र न जानंति सुरासुराः॥ मनसा कर्मणा वाचा यो मे शरणमागतः ॥३४॥ स हि सर्वामवाप्नोति कामनामिह लौकिकीम्॥ सर्वोत्कृष्टं च वैकुंठं मत्प्रियां कमलामपि ॥३५॥ कृष्णकृष्णेति कृष्णेति यो मां स्मरति नित्यशः ॥ जलं भित्त्वा यथा पद्मं नरकाःदुद्धराम्यहम् ॥ ३६ ॥ विनोदेनापि दंभेन मौढ्याल्लोभाच्छलादपि ॥ यो मां भजति सो वत्स मद्भक्तो नावसीदति ॥ ३७ ॥

कहता रहै ॥ ३३ ॥ हे पुत्र । मेरी यह प्रतिज्ञा है जिसे देव दानव कोई नहीं जानता. मनवचनकर्मसे जो मेरी शरण आता है वह इस लोककी सब कामनाओंको पाता है और वह सबसे श्रेष्ठ वैकुंठ और मेरी प्रिया लक्ष्मीकोभी पाता है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ कृष्णकृष्णकृष्ण इसप्रकार जो नित्य मेरा स्मरण करता है मैं उसे जैसा कमल जलका भेद करके उपर आता है वैसा नरकसे निकाल लेता हूं ॥ ३६ ॥ हे पुत्र । आनंद, दंभ, मूढता, लोभ और छलसे

भी जो मुझे भजता है वह मेरा भक्त भी दुखी नहीं होता ॥ ३७ ॥ जो मरतेसमय कृष्णका स्मरण करते हैं वे यदि पापी भी हों तो भी यमको नहीं देखते ॥ ३८ ॥ पहिली अवस्थामें जिसने अनेक पाप किये हैं वह अंतकालमें कृष्णका स्मरण करके निःसंदेह मुझे प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥ मरणसमय विवश होकर भी जो " नमः कृष्णाय महते " यह कहता है वह निश्चय मुक्ति पाता है ॥ ४० ॥ श्रीकृष्ण ऐसा उच्चारण करके जो प्राण छोड़ता है उसे

ये वै पठंति कृष्णेति मरणे पर्युपस्थिते ॥ यदि पापयुताः पुत्र न पश्यंति यमं क्वचित् ॥ ३८ ॥ पूर्वे वयसि पापानि कृतान्यपि च कृत्स्नशः ॥ अंतकाले च कृष्णेति स्मृत्वा मामेत्यसंशयम् ॥ ३९ ॥ नमः कृष्णाय महते विवशोपि वदेद्यदि ॥ ध्रुवं पदमवाप्नोति मरणे पर्युपस्थिते ॥४०॥ श्रीकृष्णेति कृतोच्चारे प्राणैर्यदि वियुज्यते ॥ दूरस्थः पश्यति च तं स्वर्गतं प्रेतनायकः ॥ ४१॥ श्मशाने यदि रथ्याया कृष्णकृष्णेति जल्पति ॥ म्रियते यदि चेत्पुत्र मामेवैति न संशयः ॥ ४२ ॥ दर्शनान्मम भक्तानां मृत्युमाप्नोति यः क्वचित् ॥ विना मत्स्मरणात्पुत्र मुक्तिमेति स मानवः ॥ ४३ ॥ पापानलस्य दीप्तस्य भयं मा कुरु पुत्रक ॥ श्रीकृष्णनाममेघोत्थैः सिच्यते नीरबिंदुभिः ॥ ४४ ॥

यमराज दूरहीसे स्वर्गमें जाता हुआ देखता है ॥ ४१ ॥ जो कृष्ण २ कहता हुआ श्मशानमें वा मार्गमें भी मरजाय तो निःसंदेह मुझे प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥ मेरे भक्तोंका दर्शन करके विना मेरा स्मरण किये भी जो मनुष्य मरता है वह भी मुक्ति पाता है ॥ ४३ ॥ हे पुत्र ! प्रदीप्त पापा-

ग्निका भय मत कर, श्रीकृष्णनामरूपी मेघसे उठे हुए जलके विंदु उसे बुझा देंगे ॥ ४४ ॥ कलिकालरूपी सर्पकी तीक्ष्ण डाढ़का क्या भय है. श्रीकृष्णनाम-काष्ठसे उठी अग्नि उसे नष्ट करेगी ॥ ४५ ॥ पापरूपी अग्निसे जले हुए, कर्मोंके न करनेवाले मनुष्योंकी श्रीकृष्णके स्मरण विना दूसरी औषधी नहीं है ॥ ४६ ॥ जैसे प्रयागमें गंगा, शुक्लतीर्थमें नर्मदा, कुरुक्षेत्रमें सरस्वती है वैसेही श्रीकृष्णका कीर्तन है ॥ ४७ ॥ संसाररूपी समुद्रमें डूबे हुए महापापरूपी

कलिकालभुजंगस्य तीक्ष्णदंष्ट्रस्य किं भयम् ॥ श्रीकृष्णनामदारूत्थवह्निदग्धः स नश्यति॥ ४५ ॥ पापपावकदग्धानां कर्मचेष्टा-
वियोगिनाम् ॥ भेषजं नास्ति मर्त्यानां श्रीकृष्णस्मरणं विना ॥ ४६ ॥ प्रयागे वै यथा गंगा शुक्लतीर्थे च नर्मदा ॥ सरस्वती
कुरुक्षेत्रे तद्वच्छ्रीकृष्णकीर्तनम् ॥ ४७ ॥ भवांभोधिनिमग्नानां महापापोर्मिपातिनाम् ॥ न गतिर्मानवानां च श्रीकृष्णस्मरणं
विना ॥ ४८ ॥ मृत्युकालेऽपि मर्त्यानां पापिनां तदनिच्छताम् ॥ गच्छतां नास्ति पाथेयं श्रीकृष्णस्मरणं विना ॥ ४९ ॥ तत्र
पुत्र गयाकाशीपुष्करं कुरुजागलम् ॥ प्रत्यहं मंदिरे यस्य कृष्णकृष्णेति कीर्तनम् ॥ ५० ॥ जीवितं जन्मसाफल्यं सुखं तस्यैव
सार्थकम् ॥ सततं रसना यस्य कृष्णकृष्णेति जल्पति ॥ ५१ ॥

तरंगोंमें पड़े हुए मनुष्योंकी विना श्रीकृष्णके स्मरणसे गति नहीं है ॥ ४८ ॥ जो पापी मरणकालके समय भी श्रीकृष्णनामस्मरणकी इच्छा नहीं करते हैं, उनको शरीरान्तके अनन्तर स्वर्गको जानेपर श्रीकृष्णनामस्मरणके विना दूसरा सहायक नहीं होता है ॥ ४९ ॥ हे पुत्र ! जिसके घरमें रोज कृष्णकृष्ण ऐसा कीर्तन होता है, उसके घर गया, काशी, पुष्कर, कुरुक्षेत्रादि सब तीर्थ वास करते हैं. ॥ ५० ॥ उसीका जीवन और जन्म

सफल है, उसीको धनका सुख है जिसकी जिव्हा सदा कृष्ण २ कहती है ॥ ५१ ॥ जिसने एकवार "हरिः" इन दो अक्षरोंका उच्चारण किया उसने मोक्ष गमनके लिये अपनी पीठ बांधी ॥ ५२ ॥ मेरे इस नाममें पाप जलानेकी ऐसी शक्ति है कि पातकी मनुष्य पातक करनेको समर्थ नहीं होता ॥ ५३ ॥ न उसका शरीर और मन दुखित होता है, न उसे पाप लगता है, न विकलता होती है, जो कृष्ण २ का कीर्तन करता है ॥ ५४ ॥

सकृदुच्चारितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥ बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥ ५२ ॥ नाम्नोस्य यावती शक्तिः पापनिर्दहने मम ॥ तावत्कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः ॥ ५३ ॥ नापविद्धं भवेत्तस्य शरीरं नैव मानसम् ॥ न पापं न च वैक्लव्यं कृष्णकृष्णेति कीर्तनात् ॥ ५४ ॥ श्रीकृष्णेति वचः पथ्यं न त्यजेद्यः कलौ नरः ॥ पापामयो वै न भवेत्कलौ तस्यैव मानसे ॥ ५५ ॥ श्रीकृष्णेति प्रजल्पंतं दक्षिणाशापतिर्नरम् ॥ श्रुत्वा मार्जयते पापं तस्य जन्मशतार्जितम् ॥ ५६ ॥ चांद्रायणशतैः पापं पराकाणां सहस्रकैः ॥ यन्नापयाति तद्याति कृष्णकृष्णेति कीर्तनात् ॥ ५७ ॥ नान्याभिर्नामकोटीभिस्तोषो मम भवेत्क-चित् ॥ श्रीकृष्णेति कृतोच्चारे प्रीतिरेवाधिकाधिका ॥ ५८ ॥

श्रीकृष्ण ऐसा वचन कलियुगमें जो मनुष्य नहीं त्यागता उसके मनमें पापरूपी रोग नहीं होता ॥ ५५ ॥ श्रीकृष्ण इसप्रकार कहते हुए मनुष्यको सुनकर दक्षिणदिशाके पति यमराज उसके सैंकडों जन्मोंके पापोंको नष्ट कर देते हैं ॥ ५६ ॥ जो पाप सैंकडों चांद्रायण और सहस्रों पराकों (व्रतविशेष) से नष्ट नहीं होता वह पाप भी कृष्ण २ कहते रहनेसे नष्ट हो जाता है ॥ ५७ ॥ और करोडों नामोंसे मेरी ऐसी प्रीति नहीं होती जैसी

श्रीकृष्णके उच्चारणसे प्रीति अधिकाधिक होती है ॥ ५८ ॥ चंद्रसूर्यके ग्रहणमें स्नानादि करनेसें जो फल होता है वही फल कृष्ण २ के कीर्तनसे होता है ॥ ५९ ॥ गुरुस्त्रीगमन और सुवर्णादिकी चोरीका पाप भी श्रीकृष्णके कीर्तनसे, घामसे तप्त पालेकी नाईं नष्ट होता है ॥ ६० ॥ जो महा पापोंसे युक्त हो और अगम्य स्त्रीमें गमन करता हो वह अंतकालमें एकवारही श्रीकृष्ण नामके कीर्तनसे नष्ट हो जाता है ॥ ६१ ॥ अशुद्ध

चंद्रसूर्योपरागेस्तु कोटीभिर्यत्फलं स्मृतं ॥ तत्फलं समवाप्नोति कृष्णकृष्णेति कीर्तनात् ॥ ५९ ॥ गुरुदाराभिगमनं हेमस्तेयादि पातकम् ॥ श्रीकृष्णकीर्तनाद्याति घर्मतप्तं हिमं यथा ॥ ६० ॥ युक्तो यदि महापापैरगम्यागमनादिभिः ॥ मुच्यते चांतकालेऽपि सकृच्छ्रीकृष्णकीर्तनात् ॥ ६१ ॥ अविशुद्धमना यस्तु विनाप्याचारवर्तनात ॥ प्रेतत्वं सोपि नाप्नोति अंते श्रीकृष्णकीर्तनात् ॥६२॥ मुखे भवतु मा जिह्वा सती यातु रसातलम् ॥ न सा चेत्कलिकाले या श्रीकृष्णगुणवादिनी ॥६३॥ स्ववक्त्रे परवक्त्रे च वंद्या जिह्वा प्रयत्नतः ॥ कुरुते या कलौ पुत्र श्रीकृष्णगुणकीर्तनम् ॥ ६४ ॥ पापवल्ली मुखे तस्य जिह्वारूपेण कीर्त्यते ॥ या न वक्ति दिवा रात्रौ श्रीकृष्णगुणकीर्तनम् ॥ ६५ ॥

मन और आचाररहित मनुष्य भी अंतकालमें श्रीकृष्णका कीर्तन करनेसे प्रेतताको प्राप्त नहीं होता ॥ ६२ ॥ जो जिह्वा कलियुगमें श्रीकृष्णका गुणानुवाद नहीं करती है वह जिह्वा मुखमें न हो. और वह असती (दुष्ट) रसातलमें जाओ ॥ ६३ ॥ अपने मुख वा पराये मुखमें जो जिह्वा कलियुगमें श्रीकृष्णगुणवादिनी हो वह यत्नपूर्वक वंदना करने योग्य है ॥ ६४ ॥ जिसके मुखमें जिह्वा रातदिन श्रीकृष्णका गुणकिर्तन

नहीं करती उसके मुखमें वह जिह्वारूपसे पापवल्ली उत्पन्न हुई है ॥ ६५ ॥ जो श्रीकृष्णका नाम वारवार नहिं लेती वह रोगरूपिणी जिह्वा सैंकड़ों टुकड़े होकर गिर पड़े ॥ ६६ ॥ श्रीकृष्णके नामका माहात्म्य जो प्रातःकाल उठकर पढ़ता है मैं निःसंदेह उसे कल्याणदायक होता हूं ॥ ६७ ॥ जो तीनों संध्याओंमें कृष्णचंद्रके नामका माहात्म्य पढ़ता है वह सब कामनाओंको पाकर मरनेके उपरांत मुक्ति पाता है ॥ ६८ ॥ इतिश्रीस्कंदपुराणे

पततां शतखंडा तु सा जिह्वा रोगरूपिणी ॥ श्रीकृष्णकृष्णकृष्णेति श्रीकृष्णेति न जल्पति ॥ ६६ ॥ श्रीकृष्णनाममाहात्म्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत् ॥ तस्याहं श्रेयसां दाता भवाम्येव न संशयः ॥ ६७ ॥ श्रीकृष्णनाममाहात्म्यं त्रिसंध्यं हि पठेत्तु यः ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति स मृतः परमा गतिम् ॥ ६८ ॥ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे मार्गशीर्षमाहात्म्ये श्रीविष्णुचतुर्मुखसंवादे श्रीकृष्णवर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ शृणु ध्यानं चतुर्वक्त्र वक्ष्यामि प्रीतमानसः ॥ श्रुतेनैव च सौभाग्यं लभते मानवो भुवि ॥ १ ॥ अथ श्रीमदुद्यानसंवीतहैमस्थलोद्भासिरत्नस्फुरन्मंडपांतः ॥ लसत्कल्पवृक्षोदितोद्दीप्तरत्नस्थलाधिष्ठितांभोज पीठाधिरूढम् ॥ २ ॥

मार्गशिरमाहात्म्ये श्रीविष्णुचतुर्मुखसंवादे श्रीकृष्णवर्णनंनाम पंचदशाध्यायस्य भाषा समाप्त ॥ १५ ॥ श्रीभगवान् बोले ॥ हे ब्रह्मा ! अब मैं प्रसन्नमन हो ध्यानका वर्णन करता हूं. जिसके सुननेमात्रसे मनुष्य पृथ्वीपर सौभाग्य प्राप्त करता है ॥ १ ॥ श्रीमान् उद्यान (उपवन) के मध्य सुवर्णकी पृथ्वीपर देदीप्यमान रत्नोंसे प्रकाशित मंडपके समीप प्रकाशमान कल्पवृक्षपर उदित हुए, प्रदीप्त रत्नोंकी पृथ्वीपर स्थित कमलके सिंहासन-

पर विराजमान ॥ २ ॥ महानीलमणिके नीलकांतिसदृश कांतिमान्, अत्यंत बालरूप, जिनके गुड़की समान सचिक्कण मुखारविंदपर सुंदर केश पड़े हुए हैं जिनका, भ्रमरोंसे पूरित प्रफुल्लित कमलकी सदृश मोहनेवाला मुखारविंद है, जिनके कमलसरीखे नेत्र हैं, ॥ ३ ॥ जिनके चलायमान कुंडलोंसे प्रकाशित और प्रफुल्लित कपोल हैं, जिनकी शोभायमान नासिका है, जिनके सुंदर लाल ओष्ठ हैं, कुछ मुस्कराता हुआ सुंदर जिनका मुख है, प्रकाशमान ऐसे अनेक गलभूषणोंसे सुशोभित जिनका कंठ है, कमलके समान शोभायमान जिनके नख हैं, सुंदर जिनके नेत्र हैं ॥ ४ ॥ जिनके हृदयपर धेनुकी

महानीलनीलाभमत्यंतबालं गुडस्निग्धवक्रांतविस्रस्तकेशम् ॥ अलिव्रातपर्याकुलोत्फुल्लपद्मप्रमुग्धाननं श्रीमदिंदीवराक्षम् ॥ ३ ॥
चलत्कुंडलोल्लासितोत्फुल्लगल्लं सुघोणं सुशोणाधरं सुस्मितास्यम् ॥ अनेकोल्लसत्कंठभूषालसंतं वहंतं नखं पौंडरीकं सुनेत्रम् ॥ ४ ॥
समुद्धूसराराःस्थलं धेनुधूल्या सुपुष्टांगमष्टापदाकल्पदीप्तम् ॥ कटीरस्थले चारु जंघोरुयुग्मे पिनद्धं क्वणत्किंकिणीजालदाम्ना ॥ ५ ॥
हसंतं लसद्बंधुजीवप्रसूनप्रभापाणिपादांबुजोदारकांत्या ॥ करे दक्षिणे पायसं वामहस्ते दधानं नवं शुद्धहय्यंगवीनम् ॥ ६ ॥
महीभारभूतामराराति यूथानलं पूतनादीन्निहंतुं प्रवृत्तम् ॥ प्रभुं गोपिकागोपवृंदेन वीतं सुरेंद्रादिभिर्वंदितं देवदेवम् ॥ ७ ॥

उड़ी हुई धूलि लगी हुई है, उत्तम पुष्ट जिनका अंग है, जिनकी सुवर्णसरिखी कांति है, जिनकी कटि और शोभायमान दोनों जंघाओंमें तगड़ीका शब्द होता है ॥ ५ ॥ और जो सुंदरतापूर्वक हँस रहे हैं, प्रकाशमान दुपहरियाके फूलोंकी कांतिसे जिनके कमलरूपी हाथ और पैरोंकी उदारकांति होरही है, जो दाये हाथमें पायस (क्षीर) और बायें हाथमें नवीन शुद्ध मक्खन लेरहे हैं ॥ ६ ॥ जो पृथ्वीपर भार करनेवाले असुरसमूहके लिये अग्नि

रूप हैं और, पूतनादिकोंको मारनेमें प्रवृत्त हैं, जो प्रभु, गोपी और गोपोंके समूहसे घिरे हुए, इंद्रादिक देवतोंसे वंदित और देवतोंके देवता हैं ॥ ७ ॥ शेष, इन्द्र, वज्र इत्यादिकोंने प्रातःकालमें पूजन करके और स्मरण करके जिसको भक्तिसे नम्र किया उस श्रीकृष्णको श्वेतकमल, मक्खन, दधि, दुग्ध आदिके बनाए हुए पदार्थोंसे पूजकर और उनका स्मरण करके प्रसन्न करै ॥ ८ ॥ इसप्रकार प्रातःकालमें प्रतिदिन नित्य आस्तिक्य (श्रद्धा) युक्त जो

प्रगे पूजयित्वा त्वनुस्मृत्य कृष्णं भुजंगेंद्रवज्रादिभिर्भक्तिनम्रः ॥ सिताभोजहय्यंगवीनैश्च दध्नो विमिश्रेण दुग्धेन संप्रीणयेत्तम् ॥ ८ ॥ इति प्रातरेवार्चयेदच्युतं यो नरः प्रत्यहं शश्वदास्तिक्ययुक्तः ॥ लभेत्सोचिरेणैव लक्ष्मीं समग्रामिह प्रेत्य शुद्धं परं धाम भूयात् ॥ ९ ॥ मंत्रश्चोक्तः पुरा पुत्र आदौ लोकमनोहरः ॥ श्रीमद्दामोदराख्यो हि शृणु तस्याधिकारिणः ॥ १० ॥ अयोग्याय न दातव्यो मंत्रराजस्त्वया सुत ॥ यत्नेन गोपनीयं च रहस्यं शीघ्रसिद्धिदम् ॥ ११ ॥ अलसं मलिनं क्लिष्टं दंभमोहसमन्वितम् ॥ दरिद्रं रोगिणं क्रुद्धं रागिणं भोगलालसम् ॥ १२ ॥

मनुष्य श्रीकृष्णको पूजता है वह इस संसारमें तत्काल संपूर्ण लक्ष्मीको पाकर मरनेके अनंतर मुक्ति पाता है ॥ ९ ॥ हे पुत्र ! लोकोंके मनको हरनेवाला श्रीमान् दामोदरके नामवाला मंत्र तुझको प्रथमही कहा गया अब उसके अधिकारियोंको सुनो ॥ १० ॥ हे पुत्र ! वह मंत्रराज अयोग्यको न देना चाहिये. उसे यत्नपूर्वक गुप्त रक्खै तो वह शीघ्र सिद्धि देगा ॥ ११ ॥ आलसी, मलीन, क्लेशयुक्त, दंभमोहयुक्त, दरिद्री, रोगी, क्रोधी, रागी, भोगकी

इच्छा करनेवाला, ॥ १२ ॥ निंदा और मत्सरतासे ग्रस्त, शठ, कठोर बोलनेवाला, अन्यायसे धन प्राप्त करनेवाला, परस्त्रीगामी ॥ १३ ॥ सदा विद्वानोंका वैरी, अज्ञानी, अपनेको पंडित माननेवाला, व्रतसे भ्रष्ट, क्लिष्टवृत्ति, खल, दुष्ट मनवाला, ॥ १४ ॥ बहुत खानेवाला, क्रूर कर्म करनेवाला, दुष्टोंमें अग्रगण्य, कृपण, पापी, भयंकर, आश्रितोंको भयदाई ॥ १५ ॥ ऐसे गुणवाले शिष्यको ग्रहण न करै, जो ग्रहण करै तो उसका दोष प्राय:

असूयामत्सरग्रस्तं शठं परुषवादिनम् ॥ अन्यायेनार्जितधनं परदाररतं तदा ॥ १३ ॥ विदुषां वैरिणं नित्यमज्ञं पंडितमानिनम् ॥ भ्रष्टव्रतं क्लिष्टवृत्तिं पिशुनं दुष्टमानसम् ॥ १४ ॥ बह्वाशिनं क्रूरचेष्टमग्रगण्यं दुरात्मनाम् ॥ कृपणं पापिनं रौद्रमाश्रितानां भयंकरम् ॥ १५ ॥ एवमादिगुणैर्युक्तं शिष्यं नैव परिग्रहेत् ॥ गृह्णीयाद्यदि तद्दोषः प्रायोगुरुमुपस्पृशेत् ॥१६॥ अमात्यदोषो राजानं जायादोषः पतिं यथा ॥ तथा शिष्यकृतो दोषो गुरुं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ १७ ॥ तस्माच्छिष्यं गुरुर्नित्यं परीक्ष्यैव परिग्रहेत् ॥ कायेन मनसा वाचा गुरुशुश्रूषणे रतम् ॥१८॥ अस्तेयवृत्तिमास्तिक्ययुक्तं मोक्षकृतोद्यमम् ॥ ब्रह्मचर्यरतं नित्यं दृढव्रतमकल्मषम् ॥ १९ ॥ प्रसन्नहृदयं शुद्धमशठं विमलाशयम् ॥ परोपकारनिरतं स्वार्थे च विगतस्पृहम् ॥ २० ॥

गुरुको लगता है ॥ १६ ॥ मंत्रीका दोष राजाको और स्त्रीका दोष पतिको और शिष्यका दोष गुरुको निःसंदेह लगता है ॥ १७ ॥ इसकारण गुरु नित्य शिष्यकी परीक्षा करके ग्रहण करै. जो मन वाणी कर्मसे गुरुसेवामें रत हो ॥ १८ ॥ सच्चा आस्तिक्ययुक्त, मोक्षका उद्योग करनेवाला, नित्य ब्रह्मचर्य्यमें रत, दृढव्रत, निष्पाप, ॥ १९ ॥ प्रसन्नहृदय, शुद्ध, शठतासे रहित, कपटरहित, परोपकारमें निरत, स्वार्थकी इच्छा न करने-

॥ ५३ ॥

वाला, अपने मन और धनसे गुरुकी प्रसन्नता करनेवाला, आश्रितोंको प्रसन्न करनेवाला और पवित्र ॥ २० ॥ २१ ॥ ऐसे शिष्यको मंत्र देना चाहिये, दूसरेको नहीं. जो झूंठ बोलता है उसे देवता शाप देते हैं ॥ २२ ॥ हे पुत्र ! अब गुरुके लक्षण कहता हूं सुनो. इन लक्षणोंसे युक्त मनुष्योंका गुरु होना चाहिये ॥ २३ ॥ मुझमें जिसका चित्त हो, शांतचित्त, अक्रोधी, मनुष्योंका मित्र, साधु, महान्, समदर्शी ॥ २४ ॥ नित्य मेरेको व्रत करनेवाला वैष्णवोंको

स्वचित्तवित्तदेहैस्तु परितोषकरं गुरोः ॥ आश्रिताना तथा पुत्र परितोषकरं शुचिम् ॥ २१ ॥ ईदृग्विधाय शिष्याय मंत्रं दद्यात्तु नान्यथा ॥ यद्यन्यथा वदेत्तस्मिन् देवताशाप आपतेत् ॥ २२ ॥ शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि गुरोरपि च लक्षणम् ॥ एभिस्तु लक्षणैर्युक्तो गुरुरेव भवेन्नृणाम् ॥ २३ ॥ मम चेताः प्रशांतात्मा विमन्युश्च सुहृन्नृणाम् ॥ साधुर्महान् समो लोके स गुरुः परिकीर्तितः ॥ २४ ॥ मम व्रतधरो नित्यं वैष्णवानां सुसंमतः ॥ मदाश्रयकथासक्तो ममोत्सवरतः सदा ॥ २५ ॥ कृपासिंधुः सुपूर्णार्थः सर्वसत्त्वोपकारकः ॥ निस्पृहः सर्वतः सिद्धः सर्वविद्याविशारदः ॥२६॥ सर्वसंशयसंछेत्तानलसो गुरुरादृतः ॥ब्राह्मणः सर्वकालज्ञः कुर्यात्सर्वेष्वनुग्रहम् ॥ २७ ॥

मान्य, नित्य मेरी कथामें आसक्त, मेरे उत्सवमें रत, ॥ २५ ॥ कृपाका समुद्र, जिसके मनोरथ पूर्ण हुए हैं सब प्राणिओंका उपकार करनेवाला, इच्छा रहित, सब प्रकारसे सिद्ध, सर्व विद्यासंपन्न, ॥ २६ ॥ सर्व संशयोंको दूर करनेवाला, आलस्यरहित, गुरुका आदर करनेवाला, ब्राह्मण, भूत भविष्य वर्तमान जान-

नेवाला और कृपा करनेवाला हो ॥ २७ ॥ पूर्वोक्त लक्षणोंसे युक्त शिष्य ऐसे गुरुसे मेरे मंदिरमें मार्गशीर्षमें मंत्रग्रहण करै ॥ २८ ॥ वैष्णवोंके व्रतोंको स्वीकार करै और मेरेको प्रिय श्रीमद्भागवतको सुने ॥ २९ ॥ लोकप्रसिद्ध श्रीमद्भागवत नामक पुराणको मेरी प्रसन्नतार्थ श्रद्धायुक्त सुने ॥ ३० ॥ जो मनुष्य नित्य भागवत पुराणको पढ़ता है उसे एक २ अक्षरके पाठसे एक २ कपिलादानका फल होता है ॥ ३१ ॥ भागवतके आधे वा चौथाई श्लोकको भी जो

पूर्वोक्तलक्षणैर्युक्तः शिष्य ईदृग्विधो गुरोः ॥ गृह्णीयात्पुत्र तन्मंत्रं मार्गशीर्षे मदायने ॥२८॥ वैष्णवाना व्रतानां च कुर्यात्स्वीकरणं बुधः ॥ मत्प्रियं शृणुयाच्छश्वच्छ्रीमद्भागवतं परम् ॥२९॥ श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं लोकविश्रुतम् ॥ शृणुयाच्छ्रद्धया युक्तो मम संतोषकारणम् ॥ ३० ॥ नित्यं भागवतं यस्तु पुराणं पठते नरः ॥ प्रत्यक्षरं भवेत्तस्य कपिलादानजं फलम् ॥ ३१ ॥ श्लोकार्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम् ॥ पठते शृणुयाद्यस्तु गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ३२ ॥ यः पठेत्प्रयतो नित्यं श्लोकं भागवतं सुत ॥ अष्टादशपुराणानां फलमाप्नोति मानवः ॥ ३३ ॥ नित्यं मम कथा यत्र तत्र तिष्ठंति वैष्णवाः ॥ कलिबाह्या नरास्ते वै येऽर्चयंति सदा मम ॥ ३४ ॥

नित्य पढता वा सुनता है वह सहस्र गोदानका फल पाता है ॥ ३२ ॥ हे पुत्र ! जो जितेंद्रियतापूर्वक श्रीमद्भागवतका श्लोक पढ़ता है वह मनुष्य अठारह पुराणोंके पढनेका फल पाता है ॥ ३३ ॥ जहां मेरी कथा होती है वहां वैष्णव नित्य स्थित रहते हैं जो नित्य मेरा पूजन करते हैं वे मनुष्य

कलियुगसे बाहर हैं ॥ ३४ ॥ जो मनुष्य वैष्णवोंके शास्त्रोंको अपने घर पूजते हैं वे सब पापोंसे छूटकर देवतोंसे वंदनीय होते हैं ॥ ३५ ॥ जो अपने घर कलियुगमें भागवतशास्त्रका पूजन करते हैं, व्याख्या करते हैं, और वांचते हैं उनपर मैं प्रसन्न होता हूं ॥ ३६ ॥ हे पुत्र ! जितने दिन भागवतशास्त्र घरमें रहता है उतनेंही दिन पितर दुग्ध, घृत, मधु और जल पान करते हैं ॥ ३७ ॥ जो भक्तिपूर्वक वैष्णवोंको भागवत शास्त्र देते हैं वे सहस्रों करोड़

वैष्णवानां तु शास्त्राणि येऽर्चयंति गृहे नराः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्ता भवंति सुरवंदिताः ॥ ३५ ॥ येऽर्चयंति गृहे नित्यं शास्त्रं भागवतं कलौ ॥ आस्फोटयंति वल्गन्ति तेषां प्रीतो भवाम्यहम् ॥ ३६ ॥ यावद्दिनानि हे पुत्र शास्त्रं भागवतं गृहे ॥ तावत्पिबंति पितरः क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥ ३७ ॥ यच्छंति वैष्णवे भक्त्या शास्त्रं भागवतं हि ये ॥ कल्पकोटिसहस्राणि मम लोके वसंति ते ॥ ३८ ॥ येऽर्चयंति सदा गेहे शास्त्रं भागवतं नराः ॥ प्रीणितास्तैश्च विबुधा यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ३९ ॥ श्लोकार्धं श्लोकपादं वा वरं भागवतं गृहे ॥ शतशोऽथ सहस्रैश्च किमन्यैः शास्त्रसंग्रहैः ॥ ४० ॥ न यस्य तिष्ठते शास्त्रं गृहे भागवतं कलौ ॥ न तस्य पुनरावृत्तिर्याम्यपाशात्कदाचन ॥ ४१ ॥

कल्पतक मेरे लोकमें वसते हैं ३८ ॥ जो अपने घर नित्य भागवतशास्त्रका पुजन करते हैं वे सदाकेलिये सब देवतोंको प्रसन्न करते हैं ॥ ३९ ॥ भागवतका आधा वा चौथाई श्लोक भी घरमें रहना श्रेष्ठ है. दूसरे सहस्रों शास्त्रोंके संग्रहसे क्या प्रयोजन है ॥ ४० ॥ कलियुगमें जिसके घरमें

भागवतशास्त्र नहीं है उसकी यमके पाशसे कभी पुनरावृत्ति (लौटना) नहीं है ॥ ४१ ॥ जिसके घर कलियुगमें भागवतशास्त्र नहीं है वह वैष्णव किसप्रकार हो सक्ता है वह चांडालसे भी अधिक नीच है ॥ ४२ ॥ हे लोकेश ! वैष्णवोंको सर्वस्व देकर भी मेरी प्रसन्नताकेलिये सदा भक्तिपूर्वक भागवतशास्त्रका संग्रह करना चाहिये ॥ ४३ ॥ कलियुगमें जहां २ भागवतशास्त्र होगा तहां २ देवतोंसहित मैं सदैव रहूंगा ॥ ४४ ॥ वहां सब तीर्थ, नदी, नद, सरोवर,

कथं स वैष्णवो ज्ञेयः शास्त्रं भागवतं कलौ ॥ गृहे न तिष्ठते यस्य श्वपचादधिको हि सः ॥ ४२ ॥ सर्वस्वेनापि लोकेश कर्तव्यः शास्त्रसंग्रहः ॥ वैष्णवैस्तु सदा भक्त्या तुष्ट्यर्थं मम पुत्रक ॥ ४३ ॥ यत्र यत्र भवेत्पुण्यं शास्त्रं भागवतं कलौ ॥ तत्रतत्र सदैवाहं भवामि त्रिदशैः सह ॥ ४४ ॥ तत्र सर्वाणि तीर्थानि नदीनदसरांसि च ॥ यज्ञाः सप्तपुरीर्नित्यं पुण्याः सर्वे शिलोच्चयाः ॥ ४५ ॥ श्रोतव्यं मम शास्त्रं हि यशोधर्मजयार्थिना ॥ पापक्षयार्थं लोकेश मोक्षार्थं धर्मबुद्धिना ॥ ४६ ॥ श्रीमद्भागवतं पुण्यमायुरारोग्यपुष्टिदम् ॥ पठनाच्छ्रवणाद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४७ ॥ न शृण्वंति न हृष्यंति श्रीमद्भागवतं परम् ॥ सत्यं सत्यं हि लोकेश तेषां स्वामी सदा यमः ॥ ४८ ॥

यज्ञ, सप्तपुरी और संपूर्ण पवित्र पर्वत स्थित होंगे ॥ ४५ ॥ यश, धर्म, जय, पापक्षय और मोक्षकी इच्छा करनेवाले धर्मबुद्धि पुरुषोंको मेरा शास्त्र सुनना चाहिये ॥ ४६ ॥ आयु, आरोग्य और पुष्टिको देनेवाला, पवित्र श्रीमद्भागवतके पढने वा सुननेसे सब पाप नष्ट होते हैं ॥ ४७ ॥ जो श्रीमद्भागवतका श्रवण नहीं करते और देखकर वा सुनकर प्रसन्न नहीं होते हैं, हे लोकेश ! यमराजही नित्य उनके स्वामी हैं, इसमें झूंठ नहीं ॥ ४८ ॥

हे पुत्र ! जो मनुष्य विशेषकरके एकादशीको श्रीमद्भागवत सुननेकेलिये नहीं जाते उनसे बढ़कर कोई पापी नहीं है ॥ ४९ ॥ जिसके घर श्रीमद्भागवतका एक वा अर्ध तथा चौथाई श्लोक भी लिखा हुआ हो उसके घर मैं वसता हूं ॥ ५० ॥ सब आश्रमोंका धारण करना और सब तीर्थोंमें स्नान करना मनुष्योंको ऐसा पवित्र नहीं करता जैसा श्रीमद्भागवत पवित्र करता है ॥ ५१ ॥ हे ब्रह्मा ! जहां २ श्रीमद्भागवत होता है तहा २ मैं जाता हूं, जैसे गौ

न गच्छति यदा मर्त्यः श्रोतुं भागवतं सुत ॥ एकादश्यां विशेषेण नास्ति पापरतस्ततः ॥ ४९ ॥ श्लोकं भागवते चापि श्लोकार्धं पादमेव वा ॥ लिखितं तिष्ठते यस्य गृहे तस्य वसाम्यहम् ॥ ५० ॥ सर्वाश्रमाभिगमनं सर्वतीर्थावगाहनम् ॥ न तथा पावनं नृणां श्रीमद्भागवतं यथा ॥ ५१ ॥ यत्र यत्र चतुर्वक्त्र श्रीमद्भागवतं भवेत् ॥ गच्छामि तत्र तत्राहं गौर्यथा सुतवत्सला ॥५२॥ मत्कथावाचकं नित्यं मत्कथाश्रवणे रतम् ॥ मत्कथाप्रीतमनसं नाहं त्यक्ष्यामि तं नरम् ॥ ५३ ॥ श्रीमद्भागवतं पुण्यं दृष्ट्वा नोत्तिष्ठते हि यः ॥ सांवत्सरं तस्य पुण्यं विलयं याति पुत्रक ॥ ५४ ॥ श्रीमद्भागवतं दृष्ट्वा प्रत्युत्थानाभिवादनैः ॥ सन्मानयेत तं दृष्ट्वा भवेत्प्रीतिर्ममातुला ॥५५॥ दृष्ट्वा भागवतं दूरात् प्रक्रमेत्संमुखं हि यः ॥ पदेपदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ ५६॥

अपने प्यारे बछड़ोंके पास जाती है ॥ ५२ ॥ जो मनुष्य मेरी कथा बांचता हो वा सुनता हो, जिसकी मेरी कथामें प्रीति हो मैं उस मनुष्यको नहीं त्यागता ॥ ५३ ॥ हे पुत्र ! पवित्र श्रीमद्भागवतको देखकर जो नहीं उठता उसके वर्षभरके पुण्य नष्ट होते हैं ॥ ५४ ॥ श्रीमद्भागवतको देखकर जो मनुष्य उठकर नमस्कार करते हैं और उसका आदर करते हैं उन्हें देखकर मेरी बड़ी प्रीति होती है ॥ ५५ ॥ श्रीमद्भागवतको दूरहीसे

मा० मा० देखकर जो उसके सन्मुख आता है उसे एकएक चरणमें एक २ अश्वमेधका फल प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥ जो मनुष्य उठकर श्रीमद्भागवतको नमस्कार मा० टी०
करता है, उसको मैं धन, पुत्र, स्त्री और भक्ति देता हूं ॥ ५७ ॥ हे पुत्र ! अत्यंत शोभायमान उपचारोंसे जो मनुष्य भक्तिपूर्वक श्रीमद्भागवतको सुनते
॥ ५६ ॥ हैं मैं उनके वशमें होता हूं ॥ ५८ ॥ हे सुव्रत ! जो मनुष्य भक्तिपूर्वक मेरे सब उत्सवोंमें परमश्रेष्ठ श्रीमद्भागवत सुनते हैं मेरा रूप जानकर अ० १७

उत्थाय प्रणमेद्यो वै श्रीमद्भागवतं नरः ॥ धनं पुत्रांस्तथा दारान्भक्तिं च प्रददाम्यहम् ॥ ५७ ॥ महाराजोपचारैस्तु श्रीमद्भागवतं
सुत ॥ शृण्वंति ये नरा भक्त्या तेषां वश्यो भवाम्यहम् ॥ ५८ ॥ ममोत्सवेषु सर्वेषु श्रीमद्भागवतं परम् ॥ शृण्वंति ये नरा भक्त्या मम
भेदेन सुव्रत ॥ ५९ ॥ वस्त्रालंकरणैः पुष्पैर्धूपदीपोपहारकैः ॥ वशीकृतो ह्यहं वत्स सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा ॥ ६० ॥ इतिश्रीस्कंदपुराणे
मार्गशीर्षमाहात्म्ये श्रीविष्णुचतुर्मुखसंवादे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ कस्मिन् क्षेत्रे हि देवेश मार्गशीर्षोऽधिकः
स्मृतः ॥ किं फलं च भवेत्तस्मिन्नेतत्सर्वं वद प्रभो ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मथुरेति सुविख्यातमस्ति क्षेत्रं परं मम ॥
सुरम्या च प्रशस्ता च जन्मभूमिः प्रिया मम ॥ २ ॥

पूजन करते हैं ॥ ५९ ॥ और वस्त्र, भूषण, पुष्प, धूपदीपादि उपहार चढाते हैं उन्होंने मुझे अपने वशमें किया है; जैसे सती स्त्रियां श्रेष्ठ पतिको वशमें ॥ ५६ ॥
करलेती हैं ॥ ६० ॥ इतिश्रीस्कंदपुराणे मार्गशिरमाहात्म्ये श्रीब्रह्मविष्णुसंवादे भाषायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ब्रह्मा बोले ॥ हे देवेश ! किस
क्षेत्रमें मार्गशिर अधिक पूज्य किया गया है ? और उसका क्या फल होता है ? हे प्रभो ! यह सब मुझसे कहिये ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले ॥ मथुरा

नामसे विख्यात मेरा परम क्षेत्र है. वह रमणीय और प्रशंसनीय मेरी प्रिय जन्मभूमि है ॥ २ ॥ हे ब्रह्मा ! मनुष्य मथुरामें एक २ चरण चलनेसे तीर्थका फल होता है और जहां २ स्नान करता है वह घोर पापसे छूटता है ॥ ३ ॥ सर्व धर्मोंसे रहित दुष्ट पुरुषोंके नरकके दुःखको हरनेवाली पापनाशिनी मथुराही है ॥ ४ ॥ कृतघ्न, मद्यपेयी, चौर और भग्नव्रत मनुष्य भी मथुराको जानेसे घोर पापसे छूटता है ॥ ५ ॥ जिसप्रकार सूर्योदयसे

पदे पदे तीर्थफलं मथुरायां चतुर्मुख ॥ यत्र यत्र नरः स्नातो मुच्यते घोरकिल्बिषात् ॥३॥ सर्वधर्मविहीनानां पुरुषाणां दुरात्मनाम्॥
नरकार्तिहरा पुत्र मथुरा पापनाशिनी ॥ ४ ॥ कृतघ्नश्च सुरापश्च चौरो भग्नव्रतस्तथा ॥ मथुरां प्राप्य मनुजो मुच्यते घोरपातकात् ॥
॥ ५ ॥ सूर्योदये तमो नश्येद्यथा वज्रभयान्नगाः ॥ तार्क्ष्यं दृष्ट्वा यथा सर्पा मेघा वातहता यथा ॥ ६ ॥ तत्त्वज्ञानाद्यथा दुःखं
हरिं दृष्ट्वा यथा गजाः ॥ तथा पापानि नश्यंति मथुरादर्शनात्सुत ॥ ७ ॥ श्रद्धया भक्तियुक्तस्तु दृष्ट्वा मधुपुरीं नरः ॥ ब्रह्महापि
विशुध्येत किं पुनस्त्वन्यपातकी ॥ ८ ॥ मथुरां स्नातुकामस्य गच्छतस्तु पदे पदे ॥ निराशानि व्रजंत्येव पापानि च शरीरतः ॥
मार्ग १५-१६ ॥ ९ ॥ अनुषंगेण गच्छंति वाणिज्येनापि सेवया ॥ मथुरास्नानमात्रेण पापं त्यक्त्वा दिवं व्रजेत् ॥ १० ॥

तम, वज्र पातसे पर्वत, गरुड़दर्शनसे सर्प, वायुसे ताडित मेघ नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥ और जैसे तत्त्वज्ञानसे दुःख, सिंहदर्शनसे हाथी नष्ट होते हैं, ऐसेही मथुराके दर्शनसे पाप नष्ट होते हैं. ॥ ७ ॥ श्रद्धापूर्वक भक्तियुक्त ब्रह्महत्यारा मनुष्य भी मथुराको देखकर शुद्ध हो जाता है तो क्या दूसरा पातकी शुद्ध न होगा ॥ ८ ॥ मथुरामें स्नानकी इच्छासे जानेवाले मनुष्यके एकएक पदमें सर्व पापों निराश होकर उसके शरीरसे जाते हैं ॥ ९ ॥ किसी संग तथा

वाणिज्य वा सेवाके निमित्त जो मथुरामें जाकर स्नान करता है वह निष्पाप होकर स्वर्गमें जाता है ॥ १० ॥ जो सदा मथुराका नाम भी ग्रहण करता है
तो वहां नित्य सतयुग और नित्य उत्तरायण रहता है ॥ ११ ॥ हे ब्रह्मा ! जो दूसरेसे कहेहुए मथुराके मेरे मंदिरको सुनता है वह भी शीघ्र पापसे छूट
जाता है ॥ १२ ॥ हे पुत्र ! जे मनुष्य तीन रात भी वहां वसते हैं, वे उसके दर्शन करने और वहांकी रेणु उनके चरणोंपर लगनेसे पवित्र हो जाते

नामापि गृह्णतामस्याः सदैव त्वं न संशयः ॥ सदा कृतयुगं तत्र सदा चैवोत्तरायणम् ॥११॥ यः शृणोति चतुर्वक्र माथुरं मम
मंदिरम् ॥ अन्येनोच्चरिते सद्यः सोपि पापात्प्रमुच्यते ॥ १२ ॥ त्रिरात्रमपि ये तत्र वसंति मनुजाः सुत ॥ तेषां पुनंति संदृष्टाः
स्पृष्टाश्चरणरेणवः ॥ १३ ॥ यथा तृणसमूहं तु ज्वालयंति स्फुलिंगकाः ॥ तथा महांति पापानि दहते मथुरा पुरी ॥१४॥ स्नानेन
सर्वतीर्थानां यः स्यात्सुकृतसंचयः ॥ ततोऽधिकतरं प्रोक्ता मथुरा सर्वमंडले ॥ १५ ॥ चतुर्णामपि वेदानां पुण्यमध्ययनाच्च यत् ॥
तत्पुण्यं जायते तत्र मथुरां स्मरतां नृणाम् ॥ १६ ॥ अन्यत्र हि कृतं पापं तीर्थमासाद्य नश्यति ॥ तीर्थेषु यत्कृतं पापं वज्र-
लेपो भविष्यति ॥ १७ ॥

हैं ॥ १३ ॥ जैसे आगकी चिनगारियां तृणसमूहको जला देती हैं वैसेही मथुरापुरी वड़े २ पापोंको जला देतीहै ॥ १४ ॥ सब तीर्थोंके स्नानसे जो पुण्य
होता है, मथुराके सब मंडलमें जानेसे उससे भी अधिक फल प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ चारों वेदोंके पाठसे जो पुण्य होता है वही पुण्य मथुराके स्मरणसे मनु-
ष्योंको होता है. ॥ १६ ॥ और जगह किया हुआ पाप तीर्थपर जाकर नष्ट हो जाता तीर्थपर हो और किया हुआ पाप वज्रकी समान हो

जाता है ॥ १७ ॥ परंतु मथुरामें किया हुआ पाप मथुरामें नष्ट होजाता है वहां रहकर मनुष्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थ प्राप्त करता है ॥ १८ ॥ हे ब्रह्मा ! और जगह दशवर्षोंतक प्रारब्धको भोगता है परंतु मथुरामें दशही दिनतक पापका फल भोगता है ॥ १९ ॥ नित्य मथुराकी सदृश न कोई स्थान स्वर्गमें मुझे प्रिय है, न पातालमें, न अंतरिक्षमें और न मृत्युलोकमें ॥ २० ॥ सर्व तीर्थोंमें मथुरा परम श्रेष्ठ है, जहां मैंने गोपोंके साथ बाल-

मथुरायां कृतं पापं मथुरायां प्रणश्यति ॥ धर्मार्थकाममोक्षाख्यं स्थित्वा तत्र लभेन्नरः ॥ १८ ॥ अन्यत्र दशभिर्वर्षैः प्रारब्धं भुज्यते हि यत् ॥ किल्बिषं च चतुर्वक्र माथुरे दशभिर्दिनैः ॥१९॥ दिवि नैव न पाताले नांतरिक्षे न मानुषे ॥ समं तु मथुरायां हि प्रियं मम सदैव हि ॥ २० ॥ सर्वेषामेव तीर्थानां माथुरं परमं महत् ॥ बालक्रीडनरूपाणि कृतानि सह गोपकैः॥२१॥ त्रिंशद्वर्षसहस्राणि त्रिंशद्वर्षशतानि च ॥ यत्फलं भारते वर्षे तत्फलं मथुरां स्मरन् ॥ २२ ॥ सन्निहत्या तु यत्पुण्यं राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥ ततोऽधिकं लभेत्पुत्र मथुरायां दिने दिने ॥ २३ ॥ पूर्णे वर्षसहस्रे तु तीर्थराजे तु यत्फलं ॥ तत्फलं लभते पुत्र सहोमासे मधोः पुरे ॥ २४ ॥

क्रीड़ा की है ॥ २१ ॥ तैंतीस सहस्र वर्ष भारतवर्षमें रहनेसे जो फल मिलता है वही फल मथुराके स्मरणसे होता है ॥ २२ ॥ जहां राहु, सूर्य नारायणको ग्रास करताहै वहां रहनेसे जो फल है मथुरामें एक २ दिन रहनेसे उससे अधिक फल है ॥ २३ ॥ प्रयागराजमें सहस्र वर्ष रहनेसे जो फल

50

मिलता है वही फल मार्गशिरमें मथुरामें रहनेसे मिलता है ॥ २४ ॥ काशीजीमें सहस्र वर्ष रहनेसे जो फल मिलता है वही फल मार्गशिरमें मथुरामें रहनेसे
होता है ॥ २५ ॥ जो मनुष्य छः मासतक गोदावरी, और द्वारकामें वास करता है और जो कुरुक्षेत्रमें पृथ्वीदान करता है अथवा गयामें छमासतक
रहता है वह एक दिन मथुरामें रहनेवालेकी समान नहीं है ॥ २६ ॥ द्वारका, काशी, कांची, माया, गदाधर आदि कोई तीर्थ इसके तुल्य नहीं है. यमु·

पूर्णे वर्षसहस्रे तु वाराणस्यां च यत्फलम् ॥ तत्फलं लभते पुत्र मथुरायां सहोदिने ॥ २५ ॥ गोदावरीद्वारकयोर्नरो यः क्षेत्रे
कुरूणां क्षितिदायको यः ॥ षण्मासकात्साधयते गयायां समं भवेन्नो दिनमेकमाथुरम् ॥२६॥ न द्वारका काशिकांची न माया
गदाधरो यस्य समं न तीर्थम् ॥ संतर्पिता यद्यमुनाजलेन वांछंति नो वै पितरः पिण्डदानम् ॥ २७ ॥ मथुरायां प्रकुर्वंति पुरी
साधारणीदृशम् ॥ ये नरास्तेपि विज्ञेयाः पापराशिभिरन्विताः ॥ २८ ॥ न दृष्टा मथुरा येन दिदृक्षा यस्य जायते ॥ यत्र तत्र
मृतस्यापि माथुरे जन्म जायते ॥ २९ ॥ भूमे रजांसि गणयेत्कालेनापि चतुर्मुख ॥ माथुरे यानि तीर्थानि तेषां संख्या न
विद्यते ॥ ३० ॥ कुरु भोः कुरु भो वासं मथुराख्यां पुरीं प्रति ॥ वसामि सततं तस्यां गोपकन्याभिरावृतः ॥ ३१ ॥

नाजलसे तृप्त किये हुए पितर पिंडदानकी इच्छा नहीं करते ॥ २७ ॥ जो· महापापीपुरुष भी मथुराको साधारण नगरी जानते हैं उन पुरुषोंको पापरा
शियोंसे युक्त जानना चाहिये ॥ २८ ॥ जिसने मथुरा नहीं देखी और देखनेकी इच्छा बनी रही वह किसी अन्य जगह मरकर मथुराहीमें जन्म लेगा
॥ २९ ॥ हे चतुर्मुख ! पृथ्वीके रजके कण भी बहुत समयमें गिने जासक्ते हैं. परंतु मथुराके तीर्थोंकी संख्या नहीं है ॥ ३० ॥ हे ब्रह्मदेव ! मथुरापुरीमें